पञ्जाबी प्रेस अनारकली लाहौर में मुद्रित हुए।

१९६४ आश्विन

॥ श्री. ॥

ज्ञानदीपिकाजैन ।

प्रस्तावना ।

इस ज्ञानदीपिकाजैन ग्रन्थ में कुछक तो स्वमत और परमत का कथन है और कुछक देवगुरु धर्म का कथन है और कुछक चतुर्गति रूप संसार का अनित्य स्वरूप आदिक उपदेश है और कुछक हिंसा मिथ्यादि त्याग रूप और दया क्षमादि ग्रहण रूप शिक्षा है। और इस ग्रंन्थ का ग्रन्था ग्रन्थ २००० दो हज़ार श्लोक का अनुमान प्रमाण है और जो बुद्धिमान् पुरुष उपयोग सहित इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक पढेंगे तो अच्छा बोध रूप रस के लाभ को प्राप्त करेंगे ।

और कई एक मतावलंबी अनजान लोक ऐसे कहते हैं कि जैनी लोक नास्तक मती हैं अर्थात् ईश्वर को नहीं मानते हैं ॥

सो उन को इस ग्रंथ के द्वितीय भाग के परमात्म अग आदि अगों के वाचने से ऐसा भाव मालूम हो जायगा कि जैनी लोक इस रीति से तो ईश्वर सिद्ध स्वरूप परमात्म पद को मानते हैं। और इस रीति से ईश्वर अर्थात ठकुराई धारक धर्म. दाता अरिहंत देव को मानते हैं और इस रीति, से जैनी ईश्वर अर्थात् ठाकुर न्याय (इन्साफ) हुकम राज काज के कारक रजोगुणी तमोगुणी सतोगुणी राजा वासुदेव को मानते हैं और इस रीति से चैतन्य को कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता मानते हैं और इस रीति से जैन

के साधु यति सत्व तप दया क्षमा निःस्पृह प्रवृत्ति में प्रवर्त्तक हैं क्योंकि जैनी साधु वा गृहस्थियों के नियम अर्थात् देशी भाषा असूल कई एक संक्षेप मात्र आगे गुरु अङ्ग वा धर्म प्रवृत्ति अङ्ग में लिखेगा हैं परन्तु जैनी लोक ऐसे नहीं मानते हैं कि कभी तो ईश्वर निरंजन निराकार और कभीगर्भादि दुःख में फसता और कभी ईश्वर ब्रह्मज्ञानी और कभी अज्ञानी बावला होके रोता फिरता और कभी ईश्वर एक और कभी अनेक इत्यादि अपितु जैनी तो शुद्ध चैतन्य एकान्त अविनाशी पद को ईश्वर मानते हैं और संसार (जगत) को और पुण्य पाप रूप कर्मों को अनादि आस्तिक भाव मानते हैं ॥

सो हे बुद्धिमानों ! पक्षपात छोड़ के

विवेक दृष्टि करके देखो कि इस में जैनी लोक कौनसी वात अयोग्य कहते हैं और नास्तिक कैसे हुए और जो पुरुष जैन को नास्तिक कहते हैं वे जैन के और नास्तिक आस्तिक के अर्थ से अनजान हैं क्योंकि नास्तिक वे होते हैं जो परमेश्वर और जीवों को नहीं मानते हैं और पुण्य पाप रूप कर्मों को और कर्मों के फल स्वर्ग नर्क को और बंध मोक्ष को नहीं मानते हैं आगे जो जिस की समझ में आवे । इस ज्ञानदीपिका ग्रन्थ के दो भाग हैं सो प्रथम भाग में तो आत्माराम सवेगी रचित जेन तत्वादर्श ग्रथ है तिस में जो २ शास्त्रों से विरूद्ध अर्थात सूत्र से अनमिलत कथन हैं तिन के जवाब सवाल हैं और विरुद्धता को प्रगट करना

और फिर तिस का खण्डन करना ऐसा स्व-
रूप है सो जो पुरुष जैन मत में दो प्रकार
के श्रद्धानी हैं एक तो मूर्त्तिपूजक और
दूसरे निराकार ध्याता, सो इन के अभिप्राय
का जानकार होगा और सूत्र का वाकिफ़-
कार होगा सो समझेगा न तो नहीं। और
जो द्वितीयभाग है तिस में जैनधर्म अर्थात
क्षमा दया रूप जो सत्य धर्म है तिसकी
पुष्टता है सो द्वितीय भाग का बांचना और
समझना हर एक को सुगम है और इस
दूसरे भाग के बांचने और समझने से हर एक
पुरुष को वा स्त्री को ८ आठ प्रकार का बोध-
रूप लाभ होगा सो १ प्रथम तो देव गुरु धर्म
का जानकार होगा। और २ द्वितीय स्वमत
परमत का जानकार होगा। और तृतीय

विषय विकारादि आरम्भ से विरक्त होगा।
और ४ चतुर्थ अपने विकारादि अवगु-
णोंका पश्चातापी होगा। और ५ पंचम
आरम्भके त्याग स्वरूप व्रत (प्रत्याख्यान) में
उद्यमवान् होगा। और ६ षष्ट अशुद्ध
सकल्पों की निवृत्ति वाला होगा। और
७सप्तम क्षमा दया रूप गुण का लाभ होगा।
और ८ अष्टम जो गृहस्थी को धर्मकार्य
के निमित्त में प्रभात से सन्ध्या तक और
संध्या से प्रभात तक जो २ करना योग्य है
सो तिसका जानकार होगा तस्मात् कार-
णात् द्वितीय भाग का बांचना बहुत श्रेष्ठ
है॥ (१) पाठक लोकों को विदित हो कि
इस परोपकारी ग्रन्थ को मुख के आगे वस्त्र
रख करअर्थात् मुख ढाप कर पढ़ना चाहिये

क्योंकि खुले मुख से बोलने में सूक्ष्म जीवों की हिंसा हो जाती है और शास्त्र पर (पुस्तक पर) थूकें पड़जाती हैं । और इस ग्रन्थ को दीपक (दीवे) के आश्रय से न पढ़ना चाहिये क्योंकि दीपक में पतङ्ग आदिक अनेक जीव दग्ध हो कर प्राणान्त हो जाते हैं इस लिये दीपक स्मशान के तुल्य कहा जाता है तिस कारण ते जीव हिंसा से बच कर शुद्ध भाव से पक्षपात को छोड़ कर पढना चाहिये और इस ग्रन्थ के पूर्वा पर विचार से सत्यासत्य को जान कर इस दुःख बहुल संसार से छुटकारा पाने का उद्योग करना चाहिये ॥

प्रथम भाग सूचीपत्रम् ।

अथ द्वितीय भाग सूचीपत्रम्

विषय	पृष्ट

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

॥ अथ पूर्वक व्रत ॥

———:०:———

॥ श्रीः ॥

श्रीवीतरागाय नमः

॥ ज्ञानदीपिका जैन ग्रन्थ ॥

इस ग्रन्थ का नाम " ज्ञानदीपिकाजैन " यथार्थ रक्खा गया है, जैसे कि अन्धकार में सार और असार वस्तु का निश्चय न होय तब दीपिका अर्थात् दीपक की ज्योति करके देखने से यथार्थ भास हो जाता है, तैसे ही जैन मत जो शांति, दांति, क्षांति रूप है तिसके विषे जो श्वेतांबरी अर्थात् श्वेतवस्त्रके धारने वाले जैनी साधु हैं तिनकी काल के स्वभाव अर्थात् दुषमी आरा पञ्चम समा तथा व्यवहार भाषा कलियुग के प्रभाव से वर्त्त-मान काल में दो प्रकार की श्रद्धा होरही है

सो एक तो मूर्त्ति पूजक अर्थात् निरागीदेव जिनका जैन के शास्त्रों में पट् प्रकट परम त्यागी परम वैरागी पट्काय रक्षक सर्वारम्भ परित्यागी इत्यादि कथन है सो उनकी मूर्ति बना के सरागी कुदेवों की मूर्तियों की तरह गहना, कपड़ा, फल, फूल आदि से पूजने का उपदेश करने वाले सवेगी कहाते हैं। और दूसरे जो आत्मज्ञानी अर्थात् स्व आत्म पर आत्म, समदर्शी, सनातन शास्त्रों के अनुसार कठिन क्रिया के साधक और शाति, दाति क्षांति आदि का उपदेश करने वाले सो ढूंढिये कहाते हैं सोई पूर्वक । सवेगी साधु आत्मारामजी ने जैन तत्वादर्श ग्रन्थ छपाया है सो तिस ग्रन्थ को श्रवण करके अनेक जनों को ऐसी शंका उत्पन्न होती है

कि जैनतत्वादर्श ग्रन्थ में जो २ कथन है सो सर्व ही न्याय है तथा अन्याय है सो तिस भ्रमरूप अन्धकार के नाश करने के लिये यह ज्ञानदीपिका ग्रन्थ, दीपिकावत रचा गया है क्योंकि इस ज्ञानदीपिका के बांचने और सुनने से जैनतत्वादर्श ग्रन्थ में जो २ पूर्वा पर शास्त्रों से अमिलित अर्थात् विरुद्ध है तथा परस्पर विरुद्ध जो तिसी ग्रन्थ में बावले की लंगोटी की तरह आदि में कुछ और अंत में कुछ जैसे कि जिस कार्य को प्रथम, निषेधा है फिर तिसी कार्य को तादृश ही कथन में अंगीकार किया है तथा जो बिलकुल ही झूठ है तथा जो शास्त्रानुसार कथन लिखे हैं सो महा उत्तम और सत्य हैं, इत्यादि स्वरूप इस ज्ञानदीपिका ग्रन्थ के बां-

चने से बुद्धि अनुसार निष्पक्ष दृष्टि से कुछक न्याय और अन्याय प्रकट होजावेगा इत्यर्थ ज्ञानदीपिका ग्रन्थ ॥

सो इस ज्ञानदीपिका ग्रन्थ के दो भाग हैं, प्रथम भाग का नाम जैनतत्वादर्श ग्रन्थ सूचक और द्वितीय भाग का नाम सत्यधर्म प्रकाशक है ॥

* अथ प्रथमभाग प्रारम्भः *

दोहा–पंच प्रमिष्टीपै नमुं, सिद्धि साधक सुखदाय।
तिस प्रसाद प्रकट करूं, कुछक न्याय अन्याय॥१

अथ जैन तत्वादर्श ग्रन्थ में जो २ विरुद्ध लिखे हैं उनमें कितनेक विरुद्ध यहां लिखते हैं आत्माराम संवेगीने जैन तत्वादर्श ग्रन्थ छपवाया है उसमें त्यागी पुरुष साधुओं को ढूंढिये (नाम) संज्ञा से कहकर बहुत निन्दा लिखी है सो उसको हम उत्तर देते हैं कि हे भाई ! तुमको यह भी खबर है कि ढूंढिये किस रीति से कहाये हैं,सोई हम ढूंढिये कहाने का कारण लिखते हैं, जैसाकि अनुमान १७१८के साल में सूरत नगर के निवासी जाति के श्रीमाल एक लवजी नाम साहूकार ने

वजरगजी यति के पास दीक्षा ली और शास्त्र पढ़ने लगे फिर शास्त्र के अभ्यास होने से दीक्षा लिये २वर्ष के बाद जो भ्रष्टाचारी मठ वलंबी यति लोकये,उनकी शास्त्रोक्त क्रियाहीन देखी क्यों किस करके सोई उनकी क्रिया के शिथिल होने का कारण भी कुछक पहले लिख देते हैं, सो ऐसे है कि व्यवहार सूत्रकी चूलिका में खुलासा लिखा है कि १२ वर्षीय काल में घणे सूत्र विछेद जायगे इत्यादि ॥

सो विक्रम के साल ५२८ के लगभग में १२ वर्षीय काल पड़ा सुना जाता है सो तिस काल के विषे घणे तो सूत्र विछेद गये और तिस काल में साधु का जो निरवद्य आचार था सो हरएक से पलना मुशकिल होगया और आचारवान् साधु तो कोई विरला

ही शूरवीर रहगया और घणे साधु शिथिला-
चारी और भ्रष्ट होगये क्योंकि निर्दोष आहार
पानी मिलना मुशकिल होगया और क्षुधा
के न सहने करके आजीविका के निमित्त
ज्योतिष वैदंगीआदिप्ररूपने लगे और चैत्य
स्थापन मठावलंबी यति होगये जैसे कि यह
मेरा गच्छका मंदिर है अथवा यह मेरा उपा-
श्रय है इत्यादि यथा सूत्र 'चेइयं ठपावेइ दव्वा-
हारीणो मुणी भविस्सइ लोभेण मालारोहण
देउल उवहाण उद्यमण जिण बिम्ब पइठावण
विहिउ माइएहिंवहवे तवयभाव पया इस्संति
अविहेपंथे पडिस्संति इत्यादि (सूत्र) अस्यार्थः

मूर्ति की स्थापना करावेंगे द्रव्य धारी
मुनी घणे ही होजावेंगे, लोभ करके माला
रोपण अर्थात् मूर्त्तिके कंठमें फूलों की माला

ढाल के फिर उसका मोल करावेंगे अर्थात्
नीलाम करावेंगे, देहरे पाचे तप उजमण
करावेंगे, जिन विम्बप्रतिष्ठा करावेंगे, इत्यादि
घणे पाखंड होजावेंगे, उलटे पयपड़ेंगे सो
इस न्याय से साबित होता है कि यदि पहिले
यह क्रिया होती तो श्री५ भद्र बाहु स्वामी
जी ऐसे क्यों कहते कि आगे को ऐसे क्रिया
करने वाले होवेंगे ॥

और आजकल देखने में भी बहुलता
आरहा है कि ज्ञान भंडारा नाम रख के
सर्वगा लोक मालकियत् करने लग गये हैं
क्योंकि आत्माराम जीने भी जैन तत्वादर्श
ग्रंथके ४२७ पत्र पर लिखा है कि चैत्य द्रव्य
की साधु रक्षा करे अर्थात् मालकियत् करे
श्रावक को खाने न देवे, तर्क तो फिर माल-

कियत् तो होगई इत्यर्थः। और घठा मठा तपोटा पंडूर पर पाउरणा इत्यादि चोपड़ चीकने प्रवर्तने लगे और संवेगीजी संवेगीजी तथा यति जी यति जी कहाने लगे क्योंकि सूत्रों में साधु को श्रमण तथा निर्ग्रंथ तथा भिक्षु कह के लिखा है जैसे कि " पंचसयसमण सिद्धिं संपरि वुडे " इत्यादि। परन्तु पञ्चसय सम्वेगी सिद्धिं-सम्परिवुडे ऐसे कहीं नहीं लिखा है फिर और भी शास्त्रों के विषे साधु के अनेक नाम चले हैं तथा साधु गुणमाले दोहा मुनी ऋषितपस्वी संयमी, यती तपोधनसन्त श्रमण साध अणगार गुर बंदू चित हर्षंत ॥ १ ॥ इत्यादि परन्तु यहां भी साधु को संवेगी नहीं लिखा है कारणात् स्वछंद संवेगी कहाने लगे

और अपने व्यवहार वमूजिव बुद्धि के अनुसार ग्रंथ रचाने लग गये और पूर्वक जिन विम्ब प्रतिष्ठा आदि कराने लग गये और तिस समय में जो कोई साधु तथा साध्वी तथा श्रावक वा श्राविका, प्राचीन सूत्रानुसार क्रिया साधक थे उनकी हीला निंदा करने लग गये यह कथन सोला स्वप्न के अधिकार में खुलासा है इति ॥

और भगवत श्री ५ महावीर स्वामी जी के पीछे १७० वर्ष के लगभग ७ सप्तम पाट श्री भद्रबाहु स्वामी जी के पीछे संपूर्ण १४ पूर्व का ज्ञान तो विछेद गया क्योंकि स्थूल भद्रजी १० पूर्व के पाठी हुए हैं और स्वप्नो के अधिकार में भी लिखा है कि भद्रबाहु स्वामी के पीछे श्रुतकेवली नहीं होवेंगे

सोई भद्रबाहु स्वामी जी के पीछे अनुमान ३०० वर्षके पीछे विक्रम राजका साल पत्र शुरू हुआ और तिस के पीछे धर्म के समाज ऊपर अनेक २ उपद्रव पड़ते रहे क्योंकि राजा ओं के और बादशाहों के दीन आदि के निमित्त अनेक क्लेश होते रहे ऐसे ही गड़बड़ होते २ अनुमान साल ५०५ के लगभग २७ वें पाट श्री ५ देवर्द्धी क्षमाश- मन जी आचार्य हुए और उनके समय में सूत्रों की लिखित हुई और पूर्व का ज्ञान तो विछेद हो ही चुका था परंतु जितना उस समय में सूत्र ज्ञान था उतना लिखा नहीं गया और जितने सूत्र लिखे गये थे उनमें से बारह वर्षीय काल में कई एक तो विछेद गये और कई एक भंडारो में दबे पडे रहे

और पूर्वक यति लोक ग्रन्यादि रचाते रहे और ११२० साल के लगभग सूत्रों की टीका रची गई सुनी जाती है और ऐसे ही श्री ५ सुधर्म स्वामीजी की परंपरा थी, विरुद्ध वाहु-लता अन्य२ श्रद्धा और अन्य गच्छ अन्य२ समाचारी प्रवर्त्तक यति लोक वहुत होते रहे और यथार्थ सूत्रोक्तचारी थोडे ही होते रहे क्योंकि श्री ५ भद्रवाहु स्वमीजी कृत कल्प सूत्र में श्री ५ भगवन्त महावीर स्वामीजी निर्वाण कल्याणक में कथन है "सक्कृत इन्द्र वक्कं भगवते श्री ५ महावीरेजन्मरा सीक्षुद्र भस्मरासी प्रहेम्मागते इइ कारणात् जिन शासणे दो सहस्स वर्षेनो उदय पूया भविस्सइ" तस्मात् कारणात् अनुमान१५३० के साल दो हजार वर्ष पूर्ण हुए थे कि नगर

अहमदा बाद का निवासी जातिका वैश्य, नाम लोंका, तिसने सावद्य व्यापार अर्थात् वाणिज्य छोड के आजीविका के निमित्तयतियों के पास से पराचीन अचाराङ्गादि भंडार गत जो शास्त्र थे उन में से लेकर कई एक शास्त्रों का उद्धार किया अर्थात् लिखे और पढे फिर पुराने शास्त्रों को देख के लोंका बहुत विस्मित हुआ कि अहो (इति आश्चर्य) शास्त्रों के विषे तो साधु का परमत्याग वैराग आदि निरवद्य व्यवहार और निरवद्य उपदेश है और ये यतिलोक तो उक्तोक्त मन कल्पित ग्रन्थानुसार सावद्य क्रिया प्रवर्तक और प्रवर्तावक है और बहुल संसार विधारक है, इति । फिर लोंका शास्त्रों को सुनाकर बहुत लोकों को यथार्थ मार्ग में प्रवर्ताने लगा और

पूर्वक यति लोकों का उस में अपमान होने लगा। तब यतियों नें लोंके को सूत्र देने बन्द कर दिये फिर लोंके के मुख से प्राचीन शास्त्रों का सत्य उपदेश सुन कर लक्ष्मीपाति सेठ आदिक बहुत जन सनातन क्रिया साधक हो गये और शास्त्रानुसार क्रिया साधक त्यागी साधु ज्ञानजी आचार्य को ढूंढ के उन पास पैंतालीस पुरुषों ने दीक्षा लेकर देशांतरों में शास्त्रोक्त उपदेश करके जिन धर्म दिपाने लगे तत ता समय जिन शासन का उदय होता भया इति ॥

और सवेगी लोक भी ऐसे कहते हैं कि ढूंढिक मत कुछ्क ज्यादा ४०० चार सौ वर्ष से निकला है सो सत्य है परन्तु पूर्वक पर-मार्थ का अगीकार नहीं करते हैं क्योंकि

सत्कृत इन्द्र के कहने बमूजिब तो पुराने शास्त्रानुसार सनातन धर्म प्रकट भया । इति ॥

इस रीति से पूर्वक यति लोकों की क्रिया हीन हो रही थी सोई पूर्वक यति लोकों की लवजी नाम यति ने क्रिया हीन देखकर अनुमान १७२० के साल में अपने गुरु को कहने लगे कि तुम शास्त्रों के अनुसार आचार क्यों नहीं पालते तब गुरु जी बोले कि पञ्चम काल में शास्त्रोक्त सम्पूर्ण क्रिया नहीं हो सक्ता तब लव जी बोले कि तुम भ्रष्टाचारी हो मैं तुम्हारे पास नहीं रहूंगा मैं तो शास्त्रों के अनुसार क्रिया करूंगा जब उस ने मुखवस्त्रिका मुख पर लगाई और दो चार यतियों को साथ लेके

देश२ में फिरने लगे फिर उन शहरों में जो जो भ्रष्टाचारी यतियों के बहकाये हुए लोक थे वे लवजी के कठिन मार्ग को देखकर कहने लगे कि हे महाराज ! तुमने यह कठिन वृत्ति कहा से निकाली है, तब लवजी महा राज बोले कि हमने पुराने शास्त्रों में से ढूढ़कर निकाली है यथा ।

ढूंढत ढूंढत ढूंढ लिया सब वेद पुराण कुराण में जोइ ।
ज्यों दही मांहीसुं मक्खन ढूंढत सों हम ढूंढियो का,मत होई ॥
जो कछु वस्तु ढूंढेही पावत बिन ढूंढे पावत नहीं कोई ।
सों हम ढूंढ्यो धर्म दया में जीन दया बिन धर्म न होइ १ ॥

तब परस्पर लोक यों कहते भये कि यह वह यति है, जिनों ने ढूढ के क्रिया साधी है, ऐसे ही ढूढिया २ नाम प्रसिद्ध होगया और उनकी दमित इन्द्रियपन राग रङ्ग विप

यादि विरक्ति जप तप रूप समाधि को देखकर बहुत शिष्य होगये जो किसी को इसमें शङ्का उत्पन्न होय तो जैन तत्वादर्श ग्रन्थ में से सहीह कर लेना, क्योंकि वहां भी ५९२ पत्र पर यह लवजी का कुछक कथन है और जो कोई मत पक्षी ऐसे कहे कि लवजी ने उक्त से नवीन मत निकाला है तो फिर उसको यह उत्तर देना चाहिये कि उस लवजी ने तो कोई उक्त शास्त्र नहीं रचाये क्योंकि जैन तत्वादर्श रचने वालेने भी शास्त्रोक्त क्रिया करने परही लवजी का गुरुसे विवाद (तकरार) हुआ लिखा है परन्तु नवीन मत वा नवीन शास्त्र बनाने से तकरार हुआ ऐसे कहीं नहीं लिखा है, सोई पूर्वक मत पक्षी का कहना ऐसा है कि जैसे कल्पवृक्ष

आपने हाथ से लगाकर फिर कहना कि यह तो धतूरा है। और यदि किसी को यह कथन सुन के ऐसी शका उत्पन्न होय कि पहले मुख वस्त्रिका मुख पर न थी जो लवजीने मुख पर बाधी है तो उसको यह उत्तर यह देना चाहिये कि उन दिनों में पूर्वक कारण से मुख वस्त्रिका मुखपर लगाने वाले, सूत्रानुसार क्रिया करने वाले साधु कहीं २ दूर २ क्षेत्रों में कोई २ विरले ही थे, इससे लव जी की मुखवस्त्रिका मुख पर लगानी नवीन मालूम हुई और दूसरे वह लवजी मुखवस्त्रिका रहित यतियों का शिष्य था इससे नवीन मालूम हुई सोई लवजी ने सूत्रा नुसार मुखवस्त्रिका मुख पर लगाई और जो कोई ऐसे कहे कि मुखवस्त्रिका मुखपर लगा नी कहा चली है तो उसको यह पूछना

चाहिये कि मुखवस्त्रिका हाथ में रखनी कहां चली है सो असल अर्थ तो यह है कि मुख पर रहे सो मुखवस्त्रिका और जो हाथ में रहे सो हाथवस्त्रिका और फिर कोई ऐसे कहे कि मुख वस्त्रिका तो चली है परन्तु डोरा कहां चला है तो उसको यह कहना चाहिये कि, रजो हरण की फलीयें चली हैं परन्तु फलीयें अर्थात् दशियों में डोरी पावणी कहां चली है और कै तार की और के हाथ की चली है इत्यादि, सो, अब इन दिनों में उन लवजी महाराज के आम्नाय के साधु महातमा श्रीउदयचंदजी विलासरामजी श्रीमोतीरामजी श्रीजीवनरामजी आदि बहुत हैं सो ऐसे त्यागी वैरागी साधुओं को ढूंढिये नाम से आतमाराम संवेगी ने

जैन तत्वादर्श ग्रन्थ में आदि के तृतीय पत्र पर लिखा है कि ढूढिये दुर्गति अर्थात् नरक पड़ने के अधिकारी हैं और अपने आप को बहुत पण्डित करके माना है और उन्होंने जैन तत्वादर्श ग्रन्थ छपाया है सो उसमें क्या २ कथन है सो हम यहां नाम मात्र लिखते हैं कुछक तो अन्य मत वाले अर्थात् वेदान्तियों के और वैष्णवों के और शैवों के इत्यादि मतों के निन्दा रूप कथन लिखे हैं सोई कुछक तो उन्हीं के शास्त्रों के अनु- सार और कुछक कल्पित हुज्जतें करी हैं और कुछक प्रश्नोत्तर करके पूर्वक मतावल- म्बियों को रोका भी है। क्योंकि पिछले आचार्य षट मत के तर्क शास्त्र रच गये हैं सो उन शास्त्रों के बमूजिब बहुत ही परि-

श्रम करके इस ग्रन्थ में लिखित करी है और कई एक प्रचीन शास्त्रों में से जैन आम्नाय के अवतारों का और गुरूनिग्रन्थ का और धर्म का कथन किया है और कई एक पूर्वों के ज्ञान विछेद हुए पीछे यति लोकों ने कुछ तो प्राचीन शास्त्रानुसार और कुछ अपनी बुद्धि अनुसार से ग्रन्थ रचाये हैं सो उन में से श्रावकवृत्ति आदिक का कथन लिखा है सोई जो प्राचीन शास्त्रों के अनुकूल कथन किया है सो तो बहुत सुन्दर और सत्य है, और जो नवीन शास्त्रों से तथा अपनी युक्ति (दलील) से लिखा है सो कुछ सम्भव है, और कुछ असंभव है, क्योंकि उसमें कुछ सावद्य निरवद्य का विचार नहीं किया है, और नहीं कुछ जिनकी आज्ञा वा

अनाज्ञा का विचार किया है और कुछक देशाटन करने के कारण सुनी सुनाई भ्रमजनक कल्पित कहानियें लिखी हैं, और कुछक मठावलम्बियों ने जो अपनी पट्टावली रची है सो उनमें से कथन लिखा है और कुछक सारम्भी सपग्रही कुगुरा का कथन लिखा है, और कुछक अभिमान के वश होकर पूर्वक ढूंढिये साधुओं के बड़े माननीय महात्माओं की निन्दा रूप कहानियें बना कर लिखीं हैं परन्तु असत्य बोलने वा लिखने से मन में कुछ भय नहीं किया और कुछक अपने बड़े पुरुषों के विद्या मंत्र आदि दम्भ की असम्भव, मिथ्या ही बड़ाइयें लिखी हैं सो इत्यादि कथन जैन तत्वादर्श ग्रन्थ में आत्माराम संवेगी ने स्वकपोल कल्पित और अनर्गल रचे हैं ॥

यदि इस में किसी पुरुष को शङ्का उत्पन्न हो तो उसी जैनतत्वादर्श में देख कर निश्चय कर लेना और जो २ जैनतत्वादर्श ग्रन्थ में विरुद्ध हैं उन में से अब हम कई एक विरुद्ध यहां वन्नगी मात्र लिखते हैं यथाः—

(१) प्रथम जैनतत्वादर्श ग्रन्थ के ५७८वें पत्र में लिखा है कि ११४५के साल में जन्म ५ वर्ष के ने दीक्षा ली और ८४ चुरासी वर्ष के होकर कालकरा, १२२९ के साल में देवचन्द्र सूरी जी के शिष्य हेमचन्द्र सूरी जी हुए उनको लिखा है कि " तीन किरोड़ ग्रन्थ रचे हैं, सो प्रथम तो पांच वर्ष के को दीक्षा लिखी है सो विरुद्ध अर्थात् झूठ है, क्योंकि सूत्र में ५ वर्ष के को दीक्षा

देने वाला जिनाज्ञा से बाहर लिखा है। यथा व्यवहार सूत्र के १० दशवें उदेशे का १९ वा सूत्र "नोकप्पइनिगंत्याण वानिगत्थिणवा खुड्डअवा खुडिअवा उमठवास जाय उवठा वित्त एवा समुजित्त एवा" इति वचनात् अस्यार्थ नहीं कल्पे अर्थात् नहीं जिनकी आज्ञा साधु को वा साध्वी को छोटा बालक अथवा छोटी बालिका, कैसा, बालक जन्म मे आठ वर्ष से कुछ भी न्यून होय ऐसे बालक को दीक्षा में उठाना अर्थात् दीक्षित करना (साधु बना लेना) न कल्पै इत्यादि, तथा श्री भगवती सूत्र सतक २५ उदेशा ६ " समायक चारित्र की तिथि उत्कृष्टी नवहिं वासे ऊम्मि या पु वकोडी " इति वचनात् समायक चारित्र कोड पूर्व की आयु

वाला लेवे तो ९ वर्ष ऊन कोड़ पूर्व संयम उत्कृष्ट पाले अर्थात् ९ वे वर्ष में दीक्षा लेवे इस प्रकार सूत्र के न्याय से ५ वर्ष के को दीक्षा देनी लिखी सो विरुद्ध है ॥

(२) द्वितीय, तीन किरोड़ ग्रन्थ रचे लिखे हैं सो भी झूठ है क्योंकि ८४ वर्षों के ३६० दिन के हिसाबसे ३०२४०तीस हजारदो सो चालीस दिन हुए सो यदि एक२ दिनमें१०० सौ २ ग्रन्थ रचते तौ भी३०२४०००तीस लाख चौवीसहजार ग्रन्थ होते, सो हेसंवेगीजी आप अपने पूर्व पुरुषोंकी ऐसी अनहुई उपहास योग्य बड़ाई करतेहो कि अत्यन्तमति अन्ध और पामर होगा सो ऐसे विकलवचन की प्रतीत करेगा। तर्क जो तुम हमारे इस कहने पर अपने लिखेको असंभव जान कर ऐसी शरण लोगे

कि हम ग्रन्थ सञ्ज्ञा श्लोक को कहते हैं तो ऐसे भी तुम्हारा लिखा हुआ तुम को शरण नहीं लेने देता क्योंकि ५९५ वें पत्र पर लिखा है कि "यशो विजय गणिने १०० सौ ग्रन्थ रचे है तो फिर वे भी श्लोक ही हुए तो ऐसे पण्डितों की १०० श्लोकों के वास्ते क्या बड़ाई लिखने लगे थे और ऐसे तो होही नहीं सक्ता कि कहीं तो ग्रन्थ को ग्रन्थ और कहीं श्लोक को ग्रन्थ कहा क्योंकि सूत्रोंके विषे श्लोक का नाम कहीं ग्रन्थ नहीं लिखा जहां कहीं श्लोकों की सख्या करी जाती है तो वहा ऐसे लिखा जाता है कि 'ग्रन्था ग्रन्थ ५०० तथा७००इत्यादि" क्योंकि ग्रन्थ नाम बहुतों के मिलने मे होता है और आत्मारामजी ने भी जैनत्वादर्श के आदि में ऐसे लिखा है कि इस

ग्रन्थ का १६००० श्लोक का अनुमान प्रमाण है। तर्क जो श्लोक का नाम ग्रन्थ था तो ऐसे क्यों नहीं लिखा कि इस पोत्थेके १६००० ग्रन्थ है" और जो देवी का वर था यह कहोगे तो भूत विद्या अप्रमाणीक है और जो लब्धी कहोगे तो भी अप्रमाण है क्योंकि लब्ध का तो बिछेद हो गया था इसलिये तुम्हारा लिखना कि "हेमचन्द्र सूरी ने ३ तीनक्रोड़ ग्रन्थ रचे" यह किसी सूरत सही नहीं होसक्ता किन्तु यह केवल मान के वश होकर निकम्मी बड़ाई, गोलगप्पे रूपझूठ ही लिखी है॥

(३) सूत्रों से महा विरुद्ध लिखा है सो पत्र१९वें से लेकर कई एक पत्रों में प्रायःबहुत से विरुद्ध लेख हैं क्योंकि २४चौवीस तीर्थङ्करों

के दीक्षा वृक्ष लिखे हैं लेकिन सूत्र में दाक्षी वृक्ष नहीं चले किन्तु सूत्र में "चेइयवृक्ष" अर्थात् ज्ञान वृक्ष चले हैं कस्मात् जिस २ वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान, तीर्थङ्करों को प्रगट भया, अस्मात् यह समवायाङ्ग में देख लेना, लिंगियों का लिखना चौवी सोई बोलों में विरुद्ध है॥

(४) पद्म प्रभु जी को "एक उपवास से योग लिया" लिखा है यह भी सूत्र मे विरुद्ध अर्थात् झूठ है॥

(५) वासपूजजी को दो उपवास से योग लिया लिखा है यह भी झूठ है क्योंकि समवायाङ्ग सूत्र में पद्मप्रभु जी को दो उपवास और वासपूजजी को एक उपवास से योग लिया लिखा है॥

(६) मल्लिनाथ जी का जन्म कल्याण

मथुरा नगरी में लिखा है यह भी झूठ है क्योंकि ज्ञाता सूत्र में मिथिला नगरी में लिखा है

(७) मल्लिनाथ जी को एक दिन रात छद्मस्त रहे लिखा है यह भी झूठ है क्योंकि ज्ञाता सूत्र में उसी दिन केवली हुए लिखा है,

(८) मल्लिनाथ जी का केवल कल्याण, मथुरा नगरी में लिखा यह भी झूठ है क्योंकि ज्ञाता सूत्र में मिथिला नगरी में लिखा है ॥

(९) नेमनाथ जी का दीक्षा कल्याण, शौरीपुर में लिखा है यहभी झूठहै क्योंकिसमवायाङ्ग सूत्र में तथा उत्तराध्ययन में द्वारिकानगरी में लिखा है ॥

(१०) अथ परस्पर विरोध (जो आत्माराम ने जैनतत्वादर्श में लिखा है सो) लिखते हैं पत्र१० वें पर श्री ऋषभदेवजी की

दोनों साथलों में वृषभ का लछन लिखा है" फिर पत्र १५ वें पर २४ चौवीसों तीर्थङ्करों के पगों में लछन हुए लिखा है यह परस्पर विरुद्ध है पत्र ८३ वें पर लिखा है (अनुष्टुब्वृत्त)

श्लोकः—महाव्रत धराधीरा, भैक्षमात्रोपजीविनः ।
समाजिकस्या धर्मोप देशका गुरवो मताः॥१॥

इस श्लोक में ऐसा परमार्थ है कि साधु धर्मोपदेश जीवों के उद्धार के लिये करे ज्ञान दर्शन चारित्र का परन्तु ज्योतिष, यंत्र मन्त्र का उपदेश धर्महानि करने वाला है सो न करे। फिर पत्र ५७७ वें पर लिखा है कि धर्म घोष सूरी ने मन्त्र से स्त्रियों को पकड़ा था और बांधा था। तर्क० जेकर तुम ऐसा कहोगे कि उन्होंने अपने दुःख टालने के लिये बांधा था तो हम उत्तर देंगे कि मन्त्र

आदिक का करना वा कराना क्या अपने दुःख टालने के वास्ते होता है या पराये दुःख टालने के वास्ते ? और बिना कारण तो कोई भी विद्या मंत्र नहीं फोरता है सोई सूत्र में तो काम पड़े भी मंत्र आदिक विद्या फोरने की आज्ञा नहीं है प्रत्युत (बल्कि) सूत्र में तो ज्योतिष विद्या फोरने वाले को पापी समान कहा है उत्तराध्ययन १७वां तथा अध्ययन २०वां गाथा ४५ वीं "जेलरकणं सुबिणं पउंज्जमाणे निमित्तकोऊ हलसंपगाढे कुहेडविजा सवदार जीवीनगछई सरणं तंमिकाले ॥ १ ॥

और तुमने भी अपने हाथ से ५३८ वे पत्र पर लिखा है कि विष्णु कुमार साधु ने सम्पूर्ण भारतखंड के साधुओं के बचाने अर्थात्

महा परोपकार धर्म के कारण लब्धी फोरी थी और फिर लिखा है कि उसने दण्ड भी लिया था सो विचारना चाहिये कि जब ऐसे महा उत्तम कार्य के कारण भी लब्धी फोरने का दण्ड लिया था तो फिर (सामान्य कार्यस्य किं कथनं) अर्थात सामान्य कार्य का क्या कथन करना तो फिर तुमने मन्त्र करने वाले यतियों की जैसे ५६३व पत्र पर " सिद्धसेन दिवाकर ने विद्या देकर अर्थात सिखा कर राजा से सेना बनवा के सग्राम करवा दिये " ऐसी २ बड़ाई किस प्रयोजन से करी है और क्यों लिखी है ? और तुमने भी ९ नवम परिच्छेद के आदि में थोड़ा जिस को सूत्र में पाप सूत्र कहा है उसका बहुत उपदेश किया है फिर भी

बालकों कैसे उपहास योग्य दृमन दांमन बहुत से पाखण्ड लिखे हैं जैसे कि ४५० वें पत्र पर लिखा है कि " अपनी स्त्री को वार२ सराग नेत्रों से देखे और रूठ गई हो तो मना लेवे" इत्यादि और पत्र३९९पर लिखा है कि दातन रोज रोज करे फिर दातन करके साहमने ही फैंके परन्तु आस पास को न फैंके, और जो दांतन न मिले तो १२बा-रह कुरले ही कर लेवे। (सो) भला बुद्धिमा-नों को विचारना चाहिये कि इन रेड़कों से क्या सिद्धि होती है और क्या ज्ञानदर्शन चरित्र की आराधना होती है और क्या जिन आज्ञा, अनाज्ञा की आराधना होती है। तर्क० जेकर कहोगे हमने तो उपदेश नहीं किया यह तो व्यवहार ही है तो फिर हम

उत्तर देंगे कि जो उपदेश नहीं था तो फिर तुमने व्यवहार रूप मगज पच्ची और पत्र लिखने में निरर्थक परिश्रम (मिहनत) क्यों किया सो हे भाई ! ये बातें किसी बुद्धिमान् त्यागी पुरुष के हृदय में तो बैठने की नहीं और मूर्दों के तथा स्वपक्षियों के हृदय में तो दांत घसनी करके बैठाही देते होगे यह स्थूल (मोटा) परस्पर विरोध है ॥ ११ ॥

पत्र १०७ वें पर लिखा है कि " हिंसा में धर्म नहीं कहना चाहिये वंध्या पुत्र वत् और हिंसा कारण धर्म कार्य है " यह कथन को भी लिङ्गिये ने असत्य लिखा है, फिर देखो मत पक्ष करके हिंसा मे धर्म प्रत्यक्ष कहते हैं तर्क० जेकर कहोगे कि वह तो मिथ्याती मृगादिक वडे २ जीवों के मारने में अर्थात्

हिंसा में धर्म कहते हैं इस वास्ते उनकी हिंसा में धर्म कहना असत्य है तो फिर हम तुम को पूछेंगे कि यह क्या बुद्धि की विकलता है कि बड़े २ जीव अर्थात् मृगादि मारने में हिंसा है और लघु जीव अर्थात् मूषक की कीटक आदि मारने में दोष (हिंसा) नहीं हैं ॥ जैसे कि मन्दिर सञ्ज्ञक गृह (मकान) बनवाने में पंजावे लगाये जाते हैं तो वहां स्थूल जीवों के घणे प्राण नाश होते हैं तो सूक्ष्म जीवों की क्या बात कहें जैसे तुम ने ९ नवम परिच्छेद में लिखा है, कि " मन्दिर बनवानें में पर्वत को चीर के शिलादि के स्तम्भ आदि बनवाने में दोष नहीं वलकि सम्यक्त्व की शुद्धता है " फिरतुमनें इस पर हेतु दिया है कि वैद्य (हकीम)

रोगी के नशतर आदिक मारे, यदि वह रोगी मरजाय तो वैद्य (हकीम) को दोष (इलजाम) नहीं क्योंकि हकीम तो रोग गवाने का अभिलाषी है पर मारने का अर्थी नहीं है इस कारण दोष नहीं ऐसे ही पूजा आदि कर्म करने में जल और निगोद आदिक स्थावरादि की हिंसा होने का दोष नहीं क्योंकि हम तो भक्ति के अभिलाषी हैं परन्तु स्थावर की हिंसा के अभिलाषी नहीं है ॥ उत्तर पक्षी, तर्क हे भाई ! इस छुन छुनों की पुकार (आवाज) से तो केवल बालक ही रीझेंगे और बुद्धिमान लोग तो तत्व की ओर ख्याल करेंगे, तूंबे और लडके के, दृष्टान्त क्योंकि तुमने जो हिंसा में धर्म अर्थात् फूल तोडन में तथा वृक्ष छेदन में दोष नहीं लिखा है जैसे ४७९ वें

पत्र पर लिखा है कि "सनात्र पूजा में फूलों का घर बनावे और केलीघर बनावे " इत्यादि हकीम के दृष्टान्त से भव्यजनों के हृदयों को कठोर करते हो लेकिन इस हकीम के दृष्टान्त को बिचार कर देखो तो तुम्हारा ही लिखा हुआ दृष्टान्त तुम्हारे ही मत को निकृष्ट करता है क्योंकि हकीम तो यह जानता है कि नशतर के लगाने से रोग जाता रहेगा शायद ही मरेगा और तुम तो खूब जानते हो कि केले के स्तम्भ को काटेंगे तो केले की जड़ में के जीव असंख्यात तथा अनन्त निश्चय ही मरेंगे और त्रस्य जीव भी बहुत मरते हैं क्योंकि सूत्र दशवें कालिक वा आचाराङ्ग में कहा है यथा " रुड्ढे सुवा रुड्ढपईट्ठे सुवा " इति बचनात् फिर और भी सुनो कि

तुम्हारा हकीम का दृष्टांत बिलकुल अयोग्य और झूठ है क्योंकि हकीम तो रोगी की और रोगी के सम्बन्धियों (वारिसों) की आज्ञा से नशतर मारता है और वह रोगी अपने आराम के वास्ते कहता है कि हे हकीम ! मेरे नशतर मार मैं चाहे मरूं चाहे जीऊ, सो इस कारण हकीम को दोष नहीं, अगर वह हकीम रोगी की और रोगी के वारिसों की आज्ञा बिना जबरदस्ती से नशतर उसके पेट में घसोड़ देवे और फिर रोगी मरजाय तो देखो वह हकीम क्यों कर दोष अर्थात् इलजाम से बच सक्ता है इत्यर्थ। सो हे पूर्व पक्षियो ! तुम तो त्रस्य स्थावरों की मर्जी के बिना अर्थात् आज्ञा के बिनाही प्राण हरते हो क्योंकि वे वृक्ष, फल, फूल, आदि के जीव

नहीं चाहते हैं कि हमको भगवान की पूजा के निमित्त वेशक मारें और न कहते हैं कि भक्ति में हमारे प्राण वेशक हरें इस कारण से वज्र दोष आता है यथाः—

अन्यस्थानं करोति पापं धर्म स्थानं विवर्जितम् ।
धर्मस्थानम् करोति पापं वज्र कर्म विवर्द्धते ॥१॥

इति वचनात् ॥

और तुम ऐसे कहोगे कि कहां तो मृगादि हिंसा में धर्म कहना और कहां तुम फूल फल आदिक की हिंसा को निन्दते हो तो फिर हम उत्तर देते हैं कि उनका हिंसा में धर्म कहना और तुम्हारा हिंसा में धर्म कहना यह दोनों सम ही हैं क्योंकि यद्यपि मिथ्यादृष्टियों के शास्त्रों में स्थूल ही प्राणियों में जीवास्तित्व माना है और स्थावरों में जीवास्तित्व

नहीं माना है, तथापि तुम्हारे शास्त्रों में ठाम२ वीतराग देवस्थावर वनस्पति आदिक में सूच्यग्र समान में भी असंख्यात तथा अनन्त ही जीव कह गये हैं इस कारण तुम्हारा वनस्पति आदिक की हिंसा में धर्म कहना पूर्वक मिथ्यातियों के तुल्य ही श्रद्धान है और यह तो हो ही नहीं सक्ता है कि मिथ्यातियों को हिंसा में धर्म कहना वध्यापुत्रवत झूठ है और सम दृष्टि को हिंसा में धर्म कहनासत्य है जैसे कि लायकवन्द इज्जततदार और उत्तम कुलोत्पन्न विवेकी पुरुषों को तो शराव पीना, चोरी करना, और गाली देना युक्त है और लुच्चों को नंगों को और हीनाचारी नीचों को अयुक्त है सो हे मत मस्तो ! विचार कर देखो कि तुम्हारा लिखा हुआ तुम्हारे ही कहने वमूजिव परस्पर विरुद्ध है ॥

२९६ वें पत्र पर लिखा है कि द्रव्य नि-
क्षेपा जो तीर्थंकर होने वाला है, जिसका नि-
काचितबंध हो चुका है उसको पूज के नम-
स्कार करके अनेक जीव मुक्ति में गये हैं।
तर्क० यह लेख भी झूठ है क्योंकि इस रीति
से एक पुरुष को तो मोक्ष प्राप्त होगया सूत्र
द्वारा दिखाते हो किम्वा जबान से ही गर-
ड़ाट करते हो ? कस्मात् कारणात् कि निका
चित बंध तीर्थकर गोत का ३तीन भव पह-
ले पड़ता है। भला कहीं भर्थचक्री की भूला
वन देते हो फिर और भाव निक्षेपे में सीम-
न्धर स्वामी माने हैं तर्क० सो हम भी तो
भाव निक्षेपे में सीमन्धर स्वामी अर्थात् वर्त
मान तीर्थंकर अतियश संयुक्त विचरते हों
उन्हीं को भाव तीर्थंकर मानते हैं और तुम

तो प्रत्यक्ष प्रतिमा में चारों निक्षेपे मानते हो फिर तुमने भाव निक्षेपे में मूर्त्ति को क्यों नहीं लिखा ? सो तुम्हारा लिखना तुम्हारे ही कहने बमूजिब विरुद्ध है १३ । २४६ वें पत्र पर लिखा है कि लोकोत्तर मिथ्यात, वह है कि जो भगवान् की प्रतिमा को इस लोक के हेतु पूजे, जैसे कि यह काम मेरा होजावेगा तो मैं पूजा कराऊंगा और छत्र चढाऊंगा यह मिथ्यात" है फिर पत्र ४१२ वें पर लिखा है कि "द्रव्य लाभ के वास्ते पीले वस्त्र पहर के पूजा करे और शत्रु जीतने के वास्ते काले वस्त्र पहर के पूजा करे और ऐसे २ अनेक इस लोक के अर्थ पूजा के फल लिखे हैं (सो) यह क्या " कमली की नाथ कभी नाक कभी हाथ " क्योंकि प्रथम उसी

काम को निषेधा है और फिर उसी काम को अङ्गीकार किया है यह परस्पर विरुद्ध है १४ । और ४१२ वें पत्र पर लिखा है कि " घृत, गुड़, लवण अग्नि में गेरे और दान तप पूजा, सामायिक फटे कपड़ों से करे तो निष्फल " इस लेख को हम खण्डन करते हैं उत्तराध्ययन, अध्ययन १२ वां गाथा ६ ठी हर केशी बल तपस्वी को ब्राह्मण कहते हुये यथा उक्तं च " उम चेलए पंसु पिशाय भूए संकर दुसं परि हरिएकंठे " इति वचनात् अस्यार्थः असार वस्त्र रज करी पिशाच रूप उकरडी के नांखे समान वस्त्र धारा है कण्ठ इत्यर्थः । हरकेशी बल साधु के ऐसे फटे कपड़े थे जो ब्राह्मण कहते थे कि रूड़ी के उठाए हुए कपड़े हैं । तर्क० तो फिर हरकेशी

जी का तप निष्फल तो न हुआ क्योंकि वे तो तपके प्रभाव से केवल ज्ञान पाकर मुक्ति में गये हैं जो फटे कपडों से तप निष्फल हो जाता तो केवल ज्ञान और मुक्ति कहां से होती, सो लिङ्गिये का कहना सूत्रार्थ के विरुद्ध है क्योंकि फटे कपडों से तप, जप, दान, सामायिक निष्फल कदापि नहीं होगा जैसे कि कोई फटे कपडे पहरकर क्षीर खाय तो क्या मुख मीठा नहीं होगा और क्या पुष्टि नहीं होगी अपितु अवश्यमेव होगी इसी दृष्टांत से, फटे वस्त्र वाले पुरुष का करा हुआ सत्कर्म निष्फल कैसे होगा हां अलबत्ता लिङ्गियों की समझ ऐसी होगी, कि फटे कपडे में को जप तप छण जाता है अपितु ऐसे नहीं उनका यह लिखना झूठ है ॥ १५ ॥

पत्र ३७१वें पर लिखा है कि " आवश्यक सूत्र में लिखा है कि सामायिक में देवस्नात्र पूजादिक न करे। तर्क० क्योंकि इसमें ऐसा संभव होता है कि उत्तम कार्य में मध्यम कार्य संभव ही नहीं है अर्थात् संवर में आश्रव न करे इस वास्ते सामायिक में पूजा निषेध करी है। फिर ४१७ वें पत्र पर लिखा है कि सामायिक तो निर्धन श्रावक करे पूजा की सामग्री के अभाव से फिर लिखा है कि पूजा होती हो तो सामायिक बीच में ही छोड कर पूजा में फूल गूंथ नें बैठ जाय क्योंकि पूजा का विशेष पुण्य है यह देखो परस्पर विरुद्ध है ॥ १६ ॥ ४१७ पत्र पर लिखा है कि मन्दिर में मकड़ी के जाले होजावें तो साधु मन्दिर के नौकर द्वारा उत-

रवा देवे नहीं तो यत्न से आप ही उतार देवे । तर्क० देखो पक्ष का जोर, अरे ! अविचार वाची ! जब उतार ही लिया तो फिर यत्न काहेका हुआ क्योंकि श्वेत रंग के मकड़ी के जाले में अनेक अंडे होते हैं वे किसको रोवेंगे, वे तो जाला उतारते समय तत्काल ही मरजावेंगे फिर वह यत्न काहेका हुआ यह विरुद्ध १७ । ४१८ वें पत्र पर लिखा है कि पूजा तीन प्रकार की है सो (१) विघ्न दूर करणी ते अङ्ग पूजा, (२) पुण्य कारणी ते अग्र पूजा, और (३) मोक्ष दायिनी ते भाव पूजा सो जिनाज्ञा का पालन है । उत्तर पक्षी की तर्क० जिनाज्ञा का पालन तो भाव पूजा कही तो फिर तुम्हारे इस कहने बमूजिब तो दो प्रकार की पूजा में जि-

नाज्ञा का पालन न हुआ अर्थात् आज्ञा से बाहर रहीं । बस हमारी भी यही श्रद्धा है कि भाव पूजा ही जिनाज्ञा का पालन है और भाव पूजा ही मोक्ष दायिनी है । फिर तुम किस प्रकार कहते हो कि अङ्ग पूजा और अग्र पूजा अर्थात् फूल फल से मूर्त्ति का पूजन करना जिनाज्ञा और मोक्ष दायिनी है सो तुम्हारा कहना परस्पर विरुद्ध है१८॥ ४१२वें पत्र पर लिखा है कि घर देहरे की पूर्व उत्तर ओर मुख करके पूजा करे तो ४ चौथी पीढी से विच्छेद होय, दक्षिण को मुख करके पूजे तो संतान नहीं होय, और विदिशों में मुख करके पूजे तो धन पुत्र और कुल का नाश होय इत्यादि० और पत्र ४७८ वें पर लिखा है कि- जो देहरे के पास रहे तो हानि होय और पत्र

१७९ वें पर लिखा है कि वृक्ष की ध्वजा की ओर मदिर के शिखर की विचले दो पहर की छया पडे वहा वसे तो हानि होय और फिर ऐसा लिखा है कि जिनेश्वर की जिधर दृष्टि होवे उधर वसे नहीं । तर्क० कस्मात् अर्थात् क्यों न वसे जो भगवान् की दृष्टि में न वसे तो और इस्से अच्छे स्थान में कहा वसे यह तो प्रगट ही लोकों मे कथन है कि सत्पुरुप तथा साहूकार जिधर कृपा दृष्टि (मेहर की नजर करे) उधर ही पूर्ण (निहाल) कर देवे और जिधर कुदृष्टि (कहर की नजर) करे उधर ही नाश कर देवे सो तुम्हारे लेख से तो भगवान् सदैव (हरवक्त) तीव्र दृष्टि (क्रूर नजर रहते होंगे क्योंकि तुमने लिखा है कि भगवान की दृष्टि की तरफ, न वसे

तर्क०अरे भाई ! ऐसे लिखने वाले ! यह क्या तुम्हारी समझ में फरक है कि जो ऐसे ऐसे भगवान के अपमान रूप कथन लिखते हो और ऐसे ही और नवीन ग्रन्थों के कथन भी सिद्ध होंगे जिनपै तुमने आचरण (अमल) किया है । नहीं तो बुद्धिमान को चाहिये कि यथार्थ भाव पर प्रतीति करे और यह ऐसे २ पूर्वक कथन तो प्रत्यक्ष उपहास रूप विरुद्ध हैं ॥ १९ ॥ पत्र ४६७ वें पर लिखा है कि कृष्ण वासुदेव नेमजी को पूछता भया कि हे भगवन् ! कौनसा पर्व पर्वों में से उत्तम है तब नेम जी कहते भये कि मार्गशिर शुदि ११ एकादशी पर्व उत्तम है क्योंकि इस पर्व में जिनेन्द्रों के ५ पांच कल्याण सर्व क्षेत्र आश्री १५० डेढ़सौ हुए हैं फिर कृष्ण

जी यह कथन सुन कर ताही दिन से मौन पोसा करते भये विचारने लगे और ता दिन से एकादशी व्रत प्रसिद्ध हुआ। खण्डन उत्तर पक्षी की तरफ से। यह ग्रंथकार का कथन झूठ है क्योंकि सूत्र में तो भव आश्री नि-याना करने वाला अवृत्ति कहा है अगर नहीं तो सूत्र का पाठ दिखाओ कि कृष्णजी ने कोई पचक्खान धर्म निमित्त किया हो, अक योंहीं अन हुए मतग्राहियों के गोले गरडाये हुए सूत्र शास्त्र विना ही लिख धरते हो सो कृष्णजी को धर्म निमित्त अर्थात् महापर्व एकादशी पोसा करना लिखा है यह झूठ २०। पत्र २५० वें पर लिखा है कि १० प्रकार मिश्र० वचन उत्तर पक्षी की तर्फ से सो उनमें से दो वचन का अर्थ सूत्र पन्नापन्न थकी विरुद्ध

लिखा है उक्तंच " अनंत मिस्सिए " प्रत्येक मिस्सिए इन शब्दों का अर्थ पूर्व पक्षी ने ऐसे लिखा है कि अनन्त को प्रत्येक कहे तो मिश्र, प्रत्येक को अनन्त कहे तो मिश्र । तर्क० यह तो मिथ्या शब्द का अर्थ है और लिङ्गिये ने मिश्र शब्द का अर्थ लिखा है यह विरुद्ध २१। पत्र १११ वें पर लिखा है कि " मूलोत्र गुण दोष प्रति सेवी व कुश इत्यादि " उत्तर पक्षी, सो यह झूठ, क्योंकि भगवती सूत्र स-तक २५ उदेशा ६ द्वार ६ ' वकुश नियंठा नां मूल गुण पड़ि सेवय होज्जा उत्तर गुण पड़िसेवयं होज्जा ' इति वचनात् पूर्व पक्षी का कहना है कि मूलगुण उत्तरगुण में दोष लगाने वाले में वकुश नियंठा पाईये और सूत्र में मूल गुण में दोष लगाने वाले में व-

कुशानियंठा न पाईये इति सूत्रयकी विरुद्ध २२। ऐसे २ अनेक परस्पर विरुद्ध और अनेक शास्त्रार्थ के विरुद्ध और अनेक बिलकुल ही झूठ जैन तत्वादर्श ग्रन्थ में लिखे हैं सो हम कहांतक लिखें। येतो थोड़े से वन्नगीमात्र इस पुस्तक में लिखे हैं। और फिर देखियेगा कि जैनतत्वादर्श ग्रन्थ के लिखने की मिहनत का सार क्या निकला है जैसे कि पत्र २९४ वें पर लिखा है कि किसी प्रच्छक ने प्रश्न किया कि प्रतिमा के पूजन में क्या लाभ (नफा) है इस प्रश्न का उत्तर ग्रन्थ कर्त्ता ने यह दिया है पोथी पलंग पर रखते हो और चौंकी पर माथे पर रखते हो और अच्छे वस्त्र में बांधते हो इसका क्या लाभ (नफा) है ? उत्तर पक्षी की तर्क० देखो जिस प्रतिमा

के पूजने पर इतना डम्भ और पक्षपात उठाया है और पिछले आचार्यों का उपदेश और चाल चलन उलट पलट और की और तरह करा है सो उसी प्रतिमा के पूजन में जो नफ़ा होता है उस नफ़े का पाठ सूत्र में से कोई न मिला तो यह खिशानां सा मेंहने रूप जवाब लिख धरा है, खैर तदपि हम तुम्हारे जवाब को खण्डन करते हैं कि पोथी को पलंग और चौंकी पर अपने पढ़ने के आराम वास्ते रखते हैं और मत्थे पर तो कोई मत पक्षी रखता होगा और अच्छे कपड़े में तो अपने उपकरण की रक्षा वास्ते रखते हैं परन्तु पोथी की पूजा तो नहीं करते हैं यथा ' नमो ब्रह्मलिपये ' इति अस्यार्थः, नमस्कार हो ब्रह्म ज्ञानी की लिखित को भावार्थ सो

इस पोथी यानी स्याही कागज को तो नम-
स्कार नहीं करते हैं अपितु ब्रह्मज्ञानी के ब्रह्म-
ज्ञान को नमस्कार है कि जिस ज्ञानी से लि-
खने पढने की बुद्धि प्रगट हुई तथा जिस ज्ञानी
ने अक्षरों की मर्यादा अर्थात लिखने की रीति
प्रकाश की उनको नमस्कार है शास्त्र अ-
नुयोग द्वारा सूत्र की तर्क० यदि तुम ऐसे
कहोगे कि जो पोथी को तुम नहीं पूजो तो
फिर पैरलगाओ, तो हम तुमको यह उत्तर
देंगे कि किसी पुरुष ने किसी पुरुष को
कहा कि तुम किसी सामान्य पुरुषको पूजो
तो फिर उस ने कहा कि मैं तो नहीं पूजता
इस के पूजने में क्या नफा है तो पूर्व पक्षी
बोला कि नहीं पूजो तो ठोकर मारो, उत्तर
पक्षी बोला कि ठोकर मारने का क्या मक-

सद है 'न मारिये न पूजिये' सो यह दृष्टान्त सही है और तुम्हारा जवाब पण्डिताई के राह पर तो है नहीं क्योंकि सूत्र के पाठानुपाठ खोल धरने थे कि पूजा का यह नफ़ा है। परन्तु होते तो लिखते न हों तो कहां से लिखें। और अपनी तर्फ़ से तो सूत्रों में बहुतेरा ही ढूंड रहे परन्तु कहीं होते तो पाते हां अलवत्ता सूत्र में से ढूंड ढांड के एक- दशवैं कालिक के ८ वें अध्ययन की गाथा ५५ वीं ब्रह्मचारी के अर्थ में है सो खोल धरते हैं यथा ' चितिभित्तं न निज्झाए नारीं वास अलंकिअं, भरकरं पिवदठूणं, दिठंपडि समा हरे ॥ १ ॥ अस्यार्थः साधु ब्रह्मचारी पुरुष चि० चित्राम की भीत देखे नहीं ना० वा अथवा स्त्री अलङ्कार अर्थात् भूषण (गहने)

सहित अलंकृत को देखे नहीं कदाचित् नजर जापडे तो दि० दृष्टि को पीछे मोड़े भ० (जैसे) सूर्य पर दृष्टि जापड़े तो जल्दी पीछे मुडजाये इत्यर्थ भला मूर्त्ति पूजनी सही किस तरह इस गाथा में होगई, खैर बडी बड़ाई कहते हो कि स्त्री की मूर्त्ति देखने काम जागता है और भगवान की मूर्त्ति देखने से वैराग्य जागता है सोई काम जागने का और वैराग्य जागने का वास्तव तत्व समझ कर देखो तो बडा फर्क दिखाई देगा सो अगले प्रश्न के जवाब में लिखेंगे॥

फिरपत्र २९४ वें पर लिखा है कि किसी ने प्रश्न किया कि भगवान के नाम लेने से प्रणाम शुद्ध हो जाते हैं तो फिर प्रतिमा के देखने में क्या नफा है तो इस प्रश्न का जवाब

ग्रन्थ कर्त्ता ने यह दिया है कि " नाम लेने से मूर्त्ती देखने में अधिक (ज्यादा) नफा है जैसे कि यौवनवती (जुवान) स्त्री अति सुन्दरी शृङ्गार सहित हो तो उसके नाम लेने से तो थोड़ा काम जागता है और प्रत्यक्ष स्त्री के तथा स्त्री की मूर्त्ती देखने से बहुत काम जागता है" उत्तर पक्षी की तर्क० हे विचार मानो ! अब देखना चाहिये कि इस जवाब के देनेवाले को और कोई शुद्ध जवाब नहीं मिला जो विराग भाव अर्थात् वैराग्य का हेतु सराग भाव् पर उतारा है, सो बिलकुल अयुक्त है क्योंकि वैराग्य तो क्षयोपम भाव है तथा निज गुण अर्थात् आत्मगुण है और काम का जागना उदय भाव है तथा परमगुण अर्थात् कर्म योग्य है, सो क्षयोपशम भाव और उदय

भाव का तो परस्पर रातदिन का अन्तर है ॥
यथा, दृष्टान्त है कि जो गृहस्थी लोक हैं,
वे अपने पुत्र, पुत्रियों को लिखना पढ़ना
आदिक कार व्यवहार तथा लज्जा का करना
और मीठा बोलना तथा क्षमा का करना और
माता, पिता आदिक की आज्ञा का प्रमाण
करना इत्यादि, शिक्षा और विद्या बड़ी२ मि-
हनत से सिखाते हैं और उनको बहुत अभ्यास
करने से विद्या आती है क्योंकि कर्मों का
क्षयोपशम होवे तो विद्या आवे न हो तो
नहीं आवे और फिर देखियेगा कि एक दो
दिन के बच्चों को स्तन का दबाना अर्थात्
दूधका चूगना, कौन सिखाता है और फिर
रोना, हसना और रूठना और करना कुछ
और बताना कुछ इत्यादि अनेक उपाधियें

कौन सिखाता है फिर यौवन में कामिनी से तथा पति के सङ्ग काम, क्रीड़ा करनी तथा कटाक्ष युक्त नयनों से देखना और मन्द २ हास पूर्वक मुस्कराना इत्यादि सब कर्म किस के माई, बाप सिखाते हैं यह प्रवृत्ति तो स्वतः ही आजाती है क्योंकि यह उदय भाव है इस कारण इन दोनों पूर्वोक्त भावोंका एकसा हेतु कहने वाला विरुद्धवाची है परन्तु यह भाव तो निष्पक्ष दृष्टि से सम होगा; और पक्ष के नशे में बड़बड़ाट करने के लिये तो राह अनेक हैं। अब हम एक प्रश्न करते हैं कि जब तक गुरुका उपदेश और शास्त्र ज्ञान नहीं होगा, तब तक मूर्त्ति के देखने से ज्ञान और वैराग्य कैसे होगा और ज्ञानके हुए पीछे मूर्त्ति से क्या प्रयोजन रहता है? यथा दृष्टान्त

किसी ग्राम के रहने वाले दो पुरुष किसी
प्रयोजन के लिये एक नगर में आये उन्हो
ने उस नगर के निकट सुना कि मनुष्य को
धर्म का जानना और ग्रहण करना उचित है
इसके अनन्तर वे दोनों पुरुष नगर में जाकर
अन्य अन्य पुरुषों को पूछते भये कि हे भा-
इयो ! धर्म कहा मिलता है जो मनुष्य को
अङ्गीकार करना उचित है तब एक पुरुष
को एक नागर पुरुष बोला कि धर्मशाला में
जाओ वहा सन्त जन शास्त्रार्थ धर्मोपदेश
करते हैं। और दूसरे पुरुष को एक और ना-
गर पुरुष बोला कि ठाकरद्वारे चले जाओ,
वहां ठाकुर जी को मत्था टेक कर धर्म प्राप्त
होगा। यह सुन कर एक तो धर्मशाला में
चला गया और वहां शास्त्र श्रवण करके

जाना कि जो श्रीकृष्ण ठाकुर जी स्यामवर्ण हुए हैं और १०८एक सौ आठ लक्षण संयुक्त देह महा बल धारी हुए हैं और न्याय नीति रजोगुण तमोगुण सत्वगुण धारी हुए हैं और बड़े दयावान् सन्त सहायक हुए हैं और उन्हों ने दया, दान, सत्य, इत्यादि धर्म व- ताया है और उनकी अर्द्धाङ्गना श्रीराधिका जी बड़ी लज्जावती सुशीला पति भक्ता गौर वर्ण हुई है इत्यादि । और दूसरा ठाकुरद्वारे पहुंचा तो वहां देखता क्या है कि एकस्याम वर्ण पुरुष और गौर वर्ण स्त्री, की मूर्त्ति का, जोड़ा खड़ा है सो उसको देख कर उस पुरुष ने हंस कर मन में कहा कि आहा ! क्या अच्छी स्त्री पुरुष की जोड़ी सजी है और क्या२ अच्छे जेवर हैं बस और कुछ ज्ञान वैराग्य नहीं पाया फिर वापस बाजार में आया

और वह दूसरा पुरुष धर्मशाला में से धर्मो पदेश सुनकर बाजार में आया, और दोनों आपस में पूछने लगे कि कुछ धर्म पाया ? धर्मशाला वाला बोला कि हां पाया, श्री ठाकुर जी बड़े न्यायी हुए हैं और दया दान करना, धर्म है। भला तुमने क्या पाया ? तो वह ठाकुरद्वारे वाला बोला कि मैंने तो कुछ नहीं पाया, हां अलबत्ता एक बडा सुन्दर शृङ्गियों का जोडा देख आया हूं चल तू भी मेरेसाथ चल कर देख ले तब वह बोला कि मैं देख के क्या करूंगा, जो कुछ पाना था सो मैं गुरु कृपा से पाआया हूं अब मूर्त्ति से क्या पाऊंगा जो कुछ तुमने पाया ? इत्यर्थ और इसी अर्थ में दूसरा दृष्टान्त लिखते हैं कि एकनगर में एक बडा नामी हकीम था

वह कालान्तर से काल कर गया और उस हकीम के दो बेटे थे परन्तु वे हकीमी नहीं जानते थे लेकिन एक ने अपने बाप की मूर्त्ति बनवाली और दूसरे ने बाप की हकीमी की पुस्तक सांभ रक्खी फिर एकदा समय हकीम की बडाई सुन कर कोई रोगी हकीम के द्वार आया और सुना कि हकीम तो गुज़र गया परन्तु हकीम के दो बेटे हैं उनसे अर्ज़ करो जो कदाचित् तुम्हारा रोग हटा देवें। तब वह रोगी पहिले, छोटे बेटे के पास गया और कहने लगा कि तुम हकीम के पुत्र हो और मैं दूर से आया हूं इस लिये मेरा रोग कृपा कर हटा दो। तब वह बोला कि हकीम जी की मूर्त्ति से मुराद पाओ तब वह रोगी हकीम की मूर्त्ति के आगे बैठके रोने लगा और कहने लगा कि हे हकीम

जी ! मेरीबगल में पीडा होती है मेरेकलेजे में पीडाहोती है और मुझे ताप भी चढजाता है। सो कुछ दवा बताओ कि जिससे मैं राजी होजाऊ इत्यादि परन्तु उधर से कुछ आवाज तलब न आई तब हार के चला आया और फिर बडे बेटे के पास जाके अर्ज करी कि तुम मेरा रोग हटाओ, तब वह बोला कि हकीम जी तो गुजर गये हैं परन्तु हकीम जी की पोथी मेरेपास है सो देखकर बता देता हूं फिर पोथी मेंसे देखकर बताया कि इस कारण से रोग होता और इस औषधि से रोग जाता है फिर उस रोगी ने वैसेही परहेजसे औषधि खाकर अपना रोग गमादिया इत्यर्थ ॥शास्त्र द्वारा ही ज्ञान वैराग्य होता है मूर्ति का साधन तो योंहीं लोभ तथा मत पक्ष के वश उठाते

हैं, क्योंकि उत्तराध्ययन अध्ययन १०वां गाथा ३१ वीं में ऐसा भाव है कि भगवान महावीरस्वामी कहते भये कि "आग में काले" अर्थात् पांचमें आरे में आर्य्य पुरुष जैनी भव्य लोक यों कहेंगे कि नहीं निश्चय आज दिन जिनेश्वरदेव दीखे परन्तु घणा दीखे है जिनेश्वरदेव का उपदेशा-मार्ग, तथा मार्ग के बताने वाले अर्थात् साधु। सो सूत्र यह है "नहू जिने अज्ज दीसई वहू मए दीसई मग्ग देशिए" इतिवचनात्। परन्तु यहां ऐसे नहीं कहा कि आज जिन नहीं दीखे परन्तु जिन पड़िमा जिन सारखी घनी दीखे है, इत्यादि० न जाने पूर्वपक्षी ने कौन से नये बनावटी ग्रन्थ बमूजिब, तथा स्वकपोल कल्पित जैन तत्वादर्श ग्रन्थ पत्र ५६६ वें पर लिखा है कि "सिद्धसेन दिवाकर साधु ने राजा

विक्रम के द्वारे सवाल किया कि ओंकार नगर में चतुर्द्वार जैन मन्दिर शिवमन्दर से ऊचा वनवाओ और प्रतिष्ठा भी कराओ, तब राजा ने वैसे ही करा, फिर और पत्र ५६८ वें पर लिखा है कि श्रीवज्रस्वामी आचार्य ने वौद्धों के राज में श्रीजिनेन्द्र की पूजावास्ते फूल लाके दिये बौद्ध राजा को जैन मती करा, तर्क० देखो साधु हाथों से फूल लाये परन्तु सनातन सूत्रों में तो ऐसाभाव कहीं नहीं है जैसे कि गौतम जी सुधर्म स्वामी जम्बूस्वामी आदि आचार्यों ने किसी पहाड वा मन्दिर तथा मूर्त्ति का उद्धार कराया तथा प्रतिष्ठा वा पूजा करी कराई अथवा किसी श्रावक ने पहाड की यात्रा करी तथा मन्दिर वा मूर्त्ति आदि वनवाये हों इत्यादि अपितु शास्त्र में तो ऐसा भाव है कि

बुद्धिमान साधु जहां२ ग्राम नगर में जाय तहा२ दया का उपदेश करे यथा उत्तराध्ययन अध्ययन १०वें गाथा३६वीं में "बुद्धेपारेनिबुडे चरे गाम गए नगरेत्र संजए, संते मग्गंच बूहए, समयं गोयम माप्य मापरा ॥ १ ॥

अर्थ बु०तत्व को जान शीतल स्वभाव से विचरे संयम ने विषे ते संयति साधु गा० ग्राम में गये थके तैसे ही नगर में गये हुए अर्थात् ग्राम में जाय तथा नगर में जाय तहां सं० दया मार्ग अर्थात् ६ षट् काय रक्षा रूप धर्म (च) पद पूरणार्थ है वू०क है अर्थात् दया प्रगट करे। श्री महावीर स्वामी कहते भये कि हे गौतमजी दया मार्ग के उपदेश देने में स० समय मात्र अर्थात् अल्पकाल मात्र भी प्रमाद अर्थात् आलस्य न करना

इत्यर्थ परन्तु महावीर स्वामी जी ने ऐसे तो नहीं कहा कि हे गौतम ! साधु जिस२ग्राम नगर में जाय उस२ नगर में मन्दिर वनवा देवे छैणे, ढोलकी वजवा देवे पुराने देहरों को तोड़ कर नये बनवा देवे इत्यादि हा अलबत्ता नये ग्रन्थ जिनमें ग्रन्थ रचयिता आचार्य का नाम और (साल) सम्वत् का नाम होगा सो उनमें ऐसा पूर्वक समाचार लिखा होगा परन्तु एक बड़ी मूल की बात है कि मूर्त्ति को भगवान कहना यथा " जिन पडिमा जिन सारखी " फिर दमड़ी२मोल करना बड़ी अशातना है जैसे कि एक अनापूर्वी नाम छोटी सी पोथी होती है और उसका)॥आध आना मोल पड़ता है और उसमें ११ ग्यारह मूर्त्तियें छपाते हैं । अब सोचना चाहिये कि एक२

इत्यर्थ परन्तु महावीर स्वामी जी ने ऐसे तो
नहीं कहा कि हे गौतम ! साधु जिस२ग्राम
नगर में जाय उस२ नगर में मन्दिर बनवा
देवे छैणे, ढोलकी बजवा देवे पुराने देहरों को
तोड कर नये बनवा देवे इत्यादि हां अलबत्ता
नये ग्रन्थ जिनमें ग्रन्थ रचयिता आचार्य
का नाम और (साल) सम्वत् का नाम होगा
सो उनमें ऐसा पूर्वक समाचार लिखा होगा
परन्तु एक बडी भूल की बात है कि मूर्त्ति
को भगवान कहना यथा " जिन पडिमा जिन
सारखी " फिर दमडी२मोल करना बडी अशा
तना है जैसे कि एक अनापूर्वी नाम छोटी
सी पोथी होती है और उसका)॥आध आना
मोल पडता है और उसमें ११ ग्यारह मूर्त्तियें
छपाते हैं । अब सोचना चाहिये कि एक२

मूर्त्ति का कितना कितना मोल पड़ा ॥ हा!!! अफसोस है कि वे भगवान, त्रिलोकीनाथ सार अमोल पदार्थ हैं कि जिनका नाम रख कर मूर्त्ति का एक२ कौड़ी मोल किया जाता है। तर्क० भला जो कदाचित् तुम ऐसे कहोगे कि सूत्र भी तो मोल विकते हैं तो हम उत्तर देंगे कि सूत्र को हम भगवान् तो नहीं मानते हैं कि यह ऋषभ देव जी हैं यह महावीर जी हैं अपितु सूत्र तो हमारी विद्या के याददास्ती के उपकरण हैं जैसे वही को देख कर लेना, देना याद कर लेते हैं परन्तु वही को लोक भगवान तो नहीं मानते। बस इस दृष्टान्त बमूजिब सद्गुरु की सेवा करके ज्ञान पैदा करो और जप, तप, दया, दान, संतोष और शील, में पुरुषार्थ करो कि जिससे मुक्ति

होवे और मूर्ति को भगवान् कहना तो ठीक नहीं क्योंकि इससे ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं कि —

१ प्र० देव समदृष्टि या मिथ्या दृष्टि है ?

उ० देव समदृष्टि और मूर्ति जो सुचित पाषाण की होवे तो। मिथ्या दृष्टि नहा ता जड़ ता है ही। इसी तरह सब जगह प्रश्न (सवाल) के उत्तर (जवाब) में कहना॥

२ प्र० देव, त्यागी किम्वा भोगी ?

उ० देव त्यागी, मूर्ति भोगी।

३ प्र० देव संयति किम्वा असंयति ?

उ० देव संयति मूर्ति असंयति।

४ प्र० देव संवरी किम्वा असंवरी ?

उ० देव संवरी मूर्ति असंवरी।

५ प्र० देव शुचि किम्वा अशुचि ?

उ० देव शुचि मूर्ति अशुचि।

६ प्र० देव त्रस्य किम्वा स्थावर ?

उ० देव त्रस्य, मूर्ति स्थावर ?

७ प्र० देव पञ्चेन्द्रिय किम्वा एकेन्द्रिय ?

उ० देव पञ्चेन्द्रिय, मूर्ति एकेन्द्रिय।

८ प्र० देव, मनुष्य किम्वा तिरश्चीन ?

उ० देव मनुष्य, मूर्त्ति तिरश्चीन ।

९ प्र० देवसन्नी, किम्वा असन्नी ?

उ० देव सन्नी मूर्त्ति असन्नी ।

१० प्र० देवदशप्राणधारी, किम्वा चार प्राण० ?

उ० देव दश प्राणधारी, मूर्त्ति चार प्राण० ।

११ प्र० देव षट् प्रजाधारी किम्वा चार प्रजा० ?

उ० देव षट् प्रजाधारी मूर्त्ति चार प्रजा० ।

१२ प्र० देव तीनवेद माहेंसुवेदी किंवाअवेदी ?

उ० देव अवेदी मूर्त्तिनपुंसक वेदी० ।

१३ प्र० देव यति किम्वा गृहस्थी ?

उ० देव यति० मूर्त्ति गृहस्थी ।

१४ प्र० देव सुने किम्वा न सुने ।

उ० देव सुने, मूर्त्ति न सुने ।

१५ प्र० देव देखे किम्वा न देखे ?

उ० देव देखे, मूर्त्ति न देखे ।

१६ प्र० देव सुगन्धि जाने किम्वा न जाने ?

उ० देव सुगन्धि जाने मूर्त्ति न जाने ।

१७ प्र० देव चले किम्वा न चले ?

उ० देव चले, मूर्त्ति न चले ।

१८ प्र० देव कवला हारी किम्वा रोमाहारी ?

उ० देव कवलाहारी मूर्त्ति रोमाहारी।

१९ प्र० देव अकपायी किंवा सकपायी ?

उ० देव अकपायी, मूर्त्ति सकपायी ।

२० प्र० देव शुक्ल लेशी, किम्वा कृष्ण लेशी ।

उ० देव शुक्ल लेशी मूर्त्ति कृष्ण लेशी ।

२१ प्र० देव तेरवें चौदवें गुण ठाणे किम्वा प्रथम गु० ?

उ० देव तेरवें चौदवें गुण ठाणे, मूर्त्ति प्रथम गु०

२२ प्र० देव केवली किम्वा छद्मस्थ ?

उ० देव केवली, मूर्त्ति छद्मस्थ ।

२३ प्र० देव उपदेश देवे किम्वा न देवे ?

उ० देव उपदेश देवे, मूर्त्ति न देवे ॥

२४ प्र० देव तीसरे चौथे आरे किम्वा पांचवें आरे ?

उ०देव तीसरे चौथे आरे, मूर्त्ति पांचवें आरे मनी।

२५ प्र० देव जघन कितने, उत्कृष्टे कितने ?

उ० देव जघन २० बीस, उत्कृष्टे १७० एक सौ सत्तर और मूर्त्तियें लाखों हैं घर २ में भरी है । इत्यादि फिर ' जिन पड़िमा जिन सारखी ' यह किस न्याय से कहते हो ? खैर उनकी श्रद्धा के अधीन है ॥

और यह मतान्तरों की लड़ाइ तो वीतराग देव केवल ज्ञानी मालकों के बैठे न निवड़ी जमालीवत्। और अब तो रांड फ़ौज है क्योंकि पूर्वोक्त मालक सिरपै नहीं है सो मतान्तरों की लड़ाई क्या निवड़ेगी परन्तु तदापि बुद्धि-मानों को चाहिये कि स्वआत्म परआत्म हित कार रूप धर्म में पुरुषार्थ करें क्योंकि तीर्थ-ङ्कर देव दयालु पुरुषों का निरवद्य मार्ग है यथा सूत्र सूयगड़ाङ्ग प्रथम श्रुत स्कन्ध अध्य-यन ११ वां गाथा १० तथा ११ वीं। एयंखू नाणीणो सारं, जंन हिंसई किंचणं अहिंसा समयंचेव, एतावतं वियाणिया॥ १ ॥ उढं अहेयं तिरियंच, जेकेइ तस्सथावरा, सव्वत्थ विरतिं कुज्जा संति निव्वाण माहियं ॥ २ ॥ भावार्थ इस निश्चयज्ञाननों सार जो न हणे जीवना प्राण

किश्चत् दया ही सिद्धान्त का सार है एतलो जाण १ ऊंचे नीचे तिरछे लोक में जेता त्रस स्थावर जीव है सब की हिंसा का त्याग करे दया निर्वाण कही २ तस्मात कारणात् निरवद्य मार्ग अर्थात् दया मार्ग ही प्रधान है। और फिर देखना चाहिये कि जैन तत्वादर्श ग्रन्थ रचने वाले ने पण्डिताई में तो कसर रक्खी नही परन्तु झूठे गपौड़े भी बहुत लिख धरे हैं जैसे कि पत्र ५७७ वें पर लिखा है कि "विक्रम संवत् १३४० के लग भग में पृथ्वी धर राजा के बेटे जाजण ने उज्जयन्त गिरि के ऊपर १२ योजन ऊंची सोने रूपे की ध्वजा चाढी। तर्क० भला सोचना चाहिये कि ४८ अड़तालीस कोस ऊंची ध्वजा कैसे किस के सहारे खड़ी करी होगी क्योंकि आध कोस

ऊंची ध्वजा खड़ी नहीं कोई कर सकता तो फिर ४८ कोस की ध्वजा कहनी विना विचारे गोले हीगड़ावने हैं और मत पाक्षियों ने प्यारी स्त्री के कहने की तरह हां जी ही कह छोड़ना है परन्तु बुद्धिमान ऐसे २ उल्कापातों को कैसे मानें, नहीं तो बताओ कि कौन पुरुष देख आया है कि ४८ कोस की ध्वजा है क्योंकि अनुमान ६०० वर्ष की बात बताते हो सो इतनी जलदी कहीं उड़ तो गई नहीं होगी क्योंकि तुम २४०० चौवीस सौ वर्ष के बने हुए मंदिर अब तक खड़े बताते हो तो फिर यह तो चौथे हिस्से के वर्षों की बात है, और जो तुम हमारे कहे पै लज्जा पाके ऐसी बात बना लोगे कि कोई देवता लेगया होगा तो हम यों कहेंगे कि देवते का क्या दिवाला

निकल गया जो ध्वजा को ले गया। भला सैर ले ही गया होगा तो हम को वह ग्रन्थ दिखाओ कि कौन से साल में और कौन सी तिथी, नक्षत्र, में लेगया अपितु नहीं, यह तो विलकुल उपहास योग्य झूठ है जैसे किसी बालक ने लाड में आकर कहा कि मेरा विटोहा मेरु समान है। और जो इस वचन से किसी पुरुष को क्रोध उत्पन्न होता हो तो उस पुरुष को हम क्षमावे हैं और ऐसे कहेंगे कि हे भाई ! शान्ति भाव करके जैनतत्वादर्श ग्रन्थ को सूत्र द्वारा मिला कर देखलो कि जो हम ऊपर विरोधों का स्वरूप लिख आये हैं सो यह परस्पर विरोध ठीक दिखाया है वा नहीं। सो जेकर पण्डित पुरुष के लिखने में एक झूठ भी लिखा जाय तो सभा के बीच में

पण्डिताई किधर ही को घुसड़ जाती है जैसे कि आर्य दयानन्द सरस्वती की रचाई हुई सत्यार्थप्रकाश नाम पोथी में जैन के बारे में कई एक झूठी बातें लिखी थीं तो फिर उस को एक जैनी भाई ठाकुरदास ने बहुत तंग किया था तो वह अपने असत्य लेख को मान गया था, सो इसलिये पण्डित पुरुष को ग्रन्थ में झूठ लिखना न चाहिये और जो आत्मा-राम संवेगी इन दिनों में गुजरातियों का शाहूकारा देखकर मुखपत्ती उतार के गुज़रात देश में पड़ा फिरता है सो उसने जैन तत्वा-दर्श ग्रन्थ में अनेक ही झूठ लिख धरे हैं यदि (जेकर) तुम न मानों तो भला हमारे पूर्वक दर्शाये हुए विरोधों में से दो तीन विरोधों का तो सूत्र द्वारा जवाब देवो। जैसे कि

हैं यह कुछ नई बात नहीं है और इसीलिये उसमें कोई उजर करने को भी समर्थ नहीं है और जो आपके इस ग्रन्थ रचने के अभिप्राय बमूजिब जो थोड़े काल के रचे हुए ग्रन्थानुसार तथा अपने अभिप्राय बमूजिब जो नये कथन हैं उनमें तो कुछ विशेष त्याग, वैराग्य तो प्रगट होता नहीं हां, ऐसा तात्पर्य प्रकट होता है कि हर एक मत की निन्दा आदिक तथा जैन मत जो शान्ति दान्ति निरारम्भ रूप है तिस के विषय में आपने यह पुष्टि बहुत रक्खी है कि मन्दिर नाम से मकान आदि बनवाना और अवतारों की नकल रूप मूर्त्ति रखनी और वीतराग देव की मूर्त्ति को सरागी देव की मूर्त्ति की तरह फल फूल आदि सामग्री से पूजना और

नाचना गाना बजाना इत्यादि कथन मुख्य रक्खे हैं सो हम यहां तर्क करते हैं कि ऐसी पूजा तो सरागी देवों की है यथा सीताराम जी की मूर्त्ति की, तथा राधाकृष्ण जी की मूर्त्ति की तथा शिवशक्ति की मूर्त्ति, आदि की सो ये सरागी देव हैं क्योंकि इनके काम भोगादि सामग्री स्त्री आदिक प्रत्यक्ष संयुक्त हैं सो इनकी तो फूल, फल राग रङ्ग, होम, भोग, नाच नृत्य, रूप भक्ति अर्थात् पूजा उन्ही के शास्त्रानुसार और उन्हीं के मत वसूजिब योग्य है क्योंकि उनके शास्त्रों में से उनके देवों का स्वरूप सराग, सकाम, सक्रोध, प्रकट होता है जैसे कि गोपी वल्लभ, शङ्ख चक्र गदाधारी धनुर्धारी, राक्षस रिपु मर्दन इत्यादि। और जैन में जो देव, ऋषभदेव

आदि श्रीपार्श्वनाथ जी, श्री महावीर स्वामीजी, सो इन का स्वरूप जैन शास्त्रों में परम विरक्त, परम वैराग्य और कनक कामिनी प्रसङ्ग वर्जित और सुचित पदार्थ अभोगी इत्यादि भाव प्रकट होता है । फिर तुमने ऐसे निरागी देवों की पूर्वक सरागी देवों की तरह फल, फूल, नाच, नृत्य, रूप, पूजा, कौन से न्याय से प्रमाण करी है सो हम को भी बताओ ॥ और जो तुम ऐसे कहोगे कि हम चारों अवस्थाओं को मानते हैं तो फिर हम उत्तर देंगे कि जो बाल अवस्था को पूजो तो मूर्त्ति को झगा टोपी चक्री लड्डू छणकणा इत्यादि देने चाहिये ॥ और जो राज अवस्था को पूजो तो मूर्त्ति को राज गद्दी पै बिठाओ और दीवान वजीर आदि बना कर आगे रक्खो और मुकद्दमें

के परचे आगे गेरो इत्यादि॥और जो छद्म-
स्थ अवस्था को पूजो तो वनों में तप करते
भये और पारणे को भिक्षा लेते और साढ़े
बारह किरोड़ सुनईया वर्षता ऐसे बनाओ॥
और जो केवल अवस्था को पूजो तो १२
बारह प्रकार की परिषदों में उपदेश करते भये
परमत्याग, परम वैराग्य रूप शान्त मुद्रा ऐसे
चाहिये परन्तु यह क्या रीति है कि नाले
ध्यान नाले गहने, कपड़े फल फूल नाच
नृत्य आदि० और जो तुम कहोगे कि देवता-
ओं ने नाटक करें हैं, तो हम उत्तर देंगे कि
देव तो अपनी ऋद्धि दिखाते हैं मनुष्यों में
आश्चर्य पैदा करने को तथा देवों का जीता
विहार है परन्तु आनन्द कामदेव कृष्णजी
श्रेणकजी कोणक इत्यादि भक्तजन तो नहीं

नाचे नहीं फल फूल आदि चढाते थे न पहाडों की यात्रा करने गये और न गृहस्थ अवस्था में बैठे तीर्थङ्कर देव को वन्दनें वा पूजनेंको गये इत्यादि ॥ और जो तुम कहोगे कि हम चारों निक्षेपों को वन्दे पूजे हैं तो हम उत्तर देंगे कि नहीं । झूठ बोलते हो तुम चारों निक्षेपों को नहीं पूजते क्योंकि जिस सुचित अचित वस्तु का नाम निक्षेप है कि हे महा-वीर० जैसे किसी लडके का नाम महावीर होय तो उसको तुम वन्दते, पूजते नहीं हो क्योंकि अनुयोग द्वार सूत्र में चार निक्षेपे चले हैं, सो ये हैं यथा (१) नाम निक्षेप, जो सुचित, अचित वस्तु का नाम रखा गया (थापा) हो यह नाम निक्षेप ॥ (२) जो काष्ठ तृण पाषाण कौडी आदि वस्तु को

थाप लेना कि यह मेरा असुक पदार्थ है सो स्थापना निक्षेप ॥ (३) जो गुण रूप कार्य होने का उपादानादि कारण होय सो द्रव्य निक्षेप ॥ (४) जो गुणदायक लाभदायक कार्य रूप होय सो भाव निक्षेप कहलाता है इति ॥अब दृष्टान्त सहित खुलासा लिखते हैं ॥ यथा (१) एक पुरुष का नाम राजा है उसमें राजा का नाम निक्षेप पाईए परन्तु वह राजा नहीं क्योंकि उस पै मुकद्दमा लेके कोई भी आता नहीं । (२) दूसरे काठ पाषाण वा चित्राम का राजा थाप लिया जावे जैसे कि यह रणजीत सिंह राजा है तथा राजे की मूर्त्ति है सो उसमें राजा का स्थापना निक्षेपा पाइए ॥ परन्तु वह भी राजा नहीं क्योंकि उस पै भी मुकद्दमा आदि राज कार्य की सिद्धि

के लिये कोई नहीं आता । (३) तृतीय, राजा का पुत्र है परन्तु राजगद्दी नहीं मिली है सो उसमें राजा का द्रव्य निक्षेपा पाइए तथा और किसी सामान्य पुरुष को राज्य देने को मुकर्रर किया गया है उसमें भी राजा का द्रव्य निपेक्षा पाइए क्योंकि वह राजा होने का उपादान कारण है परन्तु वह भी राजा नहीं क्योंकि उस पै भी मुकद्दमा तो नहीं होता है ॥ (४) चतुर्थ जो खासराजा गद्दी धर है उसमें राजा का भाव निक्षेपा पाइए सो वह राजा प्रमाण है क्योंकि सब के मुकद्दमें ते कर सकता है ॥ इत्यर्थ ॥ परन्तु जैसे तुम जैन तत्वादर्श में लिखचुके हो कि जो तुम स्थापना नहीं मानते हो तो भगवान का नाम क्यों लेते हो नाम लेने से क्या होगा यह

भी तो नाम निक्षेपा ही है ॥ तो हम उत्तर देंगे कि वाहजी वाह ॥ तुम नें ऐसे पण्डित होकर नाम निक्षेपा और नाम लेने का भेद भी नहीं जाना क्योंकि नाम लेना तो भाव गुणों का स्मरण है जैसे कि राजा बड़ा दयालु (कृपालु) है और बड़ा न्यायकारी है इत्यादि यह गुणों की भावरूप स्तुति का करना है किम्वा नाम निक्षेपा है ? अपितु भाव गुण है नाम निक्षेपा नहीं, नाम निक्षेपा तो वह होता है कि जो पूर्वक सुचित अचित वस्तु का नाम रक्खा जाय इति हेम और जो तुम ऐसे कहोगे कि नाचना, कूदना, गाना, बजाना, और साधु को ढोल ढमाके से शहर में प्रवेश कराना यह जैनधर्म की प्रभावना है ॥

उत्तरपक्षी—किस न्याय से ?

पूर्वपक्षी—जैसे कि महावीर स्वामी जी के आगे२ फूलों के बिछौने बिछे थे और देव दुन्दुभी बजा करे थी ॥

उत्तरपक्षी-वे तो तीर्थङ्कर देव थे इसलिये उनकी अतिशयित (अत्यन्त) महिमा प्रकाशित हो रही थी और तुम सामान्य साधु की वैसी अतिशय रूप महिमा किस न्याय से करते हो ?

पूर्वपक्षी-तब तो तीर्थङ्कर देव थे परन्तु अब पञ्चम काल में तीर्थङ्कर देव तो हैं नहीं तो फिर सामान्य साधु की ही महिमा करके जिन मार्ग को दिपावे हैं ॥

उत्तरपक्षी-अरे ! भाई ! यह तेरा कहना कैसे प्रमाण हो क्योंकि श्री ५ सुधर्म स्वामी जी, श्री५ महावीर स्वामीजी के पाठ धारीजो थे,

सो उनके तो आगमन में अतिशय रूप महिमा
किसी देव ने तथा श्रावकों ने करी ही नहीं
थी क्योंकि सूत्रों में ठाम २ ऐसापाठ है कि
सुधर्म स्वामीजी अमुक नगर में अमुक बाग
में "पंचसै समण सद्धिंसं परि वुडे" अर्थात्
पधारे अहापडिरूवं उग्गहं गिहृणीता तव संय
मेणं अप्याणं भावे माणे विहरइ परिसा निग्ग-
या धम्म कहियो परिषा पडिगया" इत्यादि
परन्तु ऐसा भाव कहीं नहीं है कि श्रावकों ने
वाजे गाजे से लाकर वाग आदिक में उतारे,
तस्मात् कारणात् तुम्हारा गाजे वाजे से नगर
में आना और श्रावकों को लाना अयुक्त है
क्योंकि जब ऐसे महात्मा पुरुष जो साक्षात्
जिन नहीं पर जिनके समान थे उनके आग-
मन में तो गाजे वाजे से नगर प्रवेश कराने

का पाठ है ही नहीं, और जो है तो सूत्र का पाठ हम को भी दिखाओ और जो सूत्र में नहीं है तो फिर तुम किस न्याय से ऐसी अशातना करते हो जो भगवान की रिस करके भगवान के तुल्य अतिशय रूप महिमा को चाहते हुए ढोल दमाके से बाजार में को आते हो और फिर कहते हो कि जिन धर्म की प्रभावना हुई० तर्क० जो जिन धर्म की प्रभावना इस तरह होती तो सुधर्म स्वामी जी आदिकों ने बाजे गाजे के आडम्बर क्यों नहीं किये ? अपितु कहां तो साधुका परम शान्ति रूप, निस्पृह मार्ग और कहां तुम्हारा एक डोला, पुस्तक, जल घडा तथा सहस्र ध्वज नाम झंडा लेकर बाजार में ढोल दमाके से घूमना, और इसको जैन की प्रभावना कहना ?

उत्तरपक्षी-यह जैन की प्रभावना नहीं है क्योंकि नाचना, कूदना ढोल ढमाका तो जो कोई ऊंच नीच पुरुष दाम खर्चेगा सो वही कर लेगा और जैनी कोई स्वर्गों का बाजा तो लेही नहीं आते हैं जो दुनिया को आश्चर्य हो कि देखो जैन धर्म वड़ा अद्भुत है जो स्वर्गों से बाजे उतरते हैं सो जो ऐसे होय तो भला धर्म की महिमा अर्थात् प्रभावना होय परन्तु ऐसे तो है नहीं ये तो वेही चर्म के बाजे हैं और वेही चण्डाल (चूड़े) आदिक बजाने वाले हैं जो हरएक गृहस्थी के व्याह शादियों में बजाया करते हैं सो कहो ऐसे२ डम्भ से धर्म की प्रभावना क्या हुई ? धर्म की प्रभावना तो त्याग, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, सत्य और संतोष के करने से और दया दान के

देने से होती है और ये पूर्व पक्षियों के पूर्वक चलन तो स्वच्छन्द हैं क्योंकि इनका भेष भी जैन के सनातन भेप से अमिलित (भिन्न) है जैसे कि सूत्र प्रश्न व्याकरण अध्ययन ८ वें तथा १० वें में साधुका भेप चला है तथा और सूत्रों में भी है सो इनका नहीं है क्योंकि ये तो बदामी रग अर्थात् भगवें से कपडे पहरते हैं और बगल के नीचे को पछेवडी अर्थात् चादर रखते हैं अन्य तीर्थी सन्यासियों की तरह और एक दड अर्थात् लम्बासा लाठा मानिन्द बरछी के तीखा सा रखते हैं ॥

और इनके देव भी और प्रकार से माने जाते हैं जिन देवों को जैन के शास्त्रों में त्यागी कहा है उन देवों को ये लोग भोगी देवों की तरह गहना कपड़ा पहना कर फल फूल से पूजते हैं ॥

और एक बड़ा आश्चर्य यह है कि सिद्धों को जैन में अरूपी कहा है सो उनके रक्त वर्ण (लाल रंग) की मूर्त्ति बना कर सिद्ध चक्र के नाम से पूजते हैं ॥

और इनका धर्म भी जैन से अमिलित (पृथक) है क्योंकि जैन में दया धर्म प्रधान है और यह पूर्वक हिंसा में धर्म कहते हैं ॥

और जैन में मुख मंद के बोलना और निरवद्य बोलना कहा है और ये मुख खोल कर बोलना प्रधान रखते हैं क्योंकि इन्हों ने फ़कीरी लेते समय तो मुख बांधा था फिर लोको के वचन कुवचन के न सहने से खोल डाला अब औरों से मुख खुला कर बड़ी खुशी गुजारते हैं परन्तु ऐसे नहीं समझते हैं कि मुख तो मालदार भांडे का मुंदा जाता है और फो-

थापवाना दंड कह्याछे इस प्रमाणते एही सं-
भवहोता है मुख बांधणाछे ते आपणा छंदा
छे इति ॥

यहदेखो कैसा अर्थका अनर्थ करदिया है क्यों-
कि पाठ में तो एक भेद है और अर्थ में दो भेद कर
दिए हैं सो अब हम पाठ और अर्थ लिखदिखाते
हैं पाठ ॥ कर्णोट्ठिया एवा मुहणतगेणवा विणा
इरीय पडिकम्मे मिछुकड पुरिमड्ढवा ॥ अर्थ(कणो
ठियाएवा) कानों में स्थापन करे (विण) विना
याने कानों में बांधे बिना क्या चीज बांधे
विना (मुहणतगेणवा) मुखपत्ति याने कानों
में मुखपत्ति बाधे विना (इरीयपडिकम्मे)
इरिआवहिपड़िकम्मेतो (मिछुकडं) मिच्छा-
मिदुक्कडदे (पुरिमड्ढंवा) अथवा पुरिमड्ढ
याने दो पहर तप का दंड आवे इत्यर्थ इस

में साफ लिखा है, कि मुखपत्ति कान में बांधनी चाहिए यदि कानमें नहीं बांधे तो दंड आवै फेर पूर्वोक्त पुस्तक की पृष्ट १०२ वीं पर लिखा है कि उत्तराध्ययन अध्ययन १२ वां गाथा ६ठी "हरकेशीवल साधु को ब्राह्मण कहते भए कि तेरे होठ मोटे हैं तेरे दान्त बड़े २ हैं इत्यादि परन्तु सूत्र में देखते हैं तो यह अर्थ स्वप्नान्तर्गत भी नहीं है ॥

सो सूत्र यह है "कयरे आगच्छइ दित्तरूवे काले विगरालेय फोक्कनासे उमृ चेलए पसुं पिसाए भूए संकर दूसं परि हरिय कण्ठे'

अर्थ—कौन है तू आंवदा चलाजा दैत्य रूप काला विकराल बैठी हुई नासिका निःसार वस्त्र रेत से भरे, पिशाच के समान रूड़ी के नाखे समान वस्त्र पहरे है कण्ठ

कट का खोल दिया जाता है और फिर मुख खोलने का आश्चर्य ही क्या है क्योंकि सारा लोक ही मुख खोले फिर रहा है सो तुम भी ऐसे ही खोले फिरो हो ॥

आश्चर्य तो मुख मूंदने का है क्योंकि लाखों में से मुख मूदने वाला कोई विरला ही शूरमा पाया जाता है जो कार्य हर एक से करना मुश्किल होय सो साधु करते हैं ॥

यथा सूत्र "दु कराइ करितार्ण दु स हाइ सहितुय" इति वचनात् और जैन का साधु मुख पर मुख वस्त्रिका लगाये विना कौन से चिन्ह से माल्म होसकता है ? तर्क० यदि तुम कहोगे कि मुख पोतिया मुख पे बाधनी किस सूत्र से चली है तो उत्तर० जहां२ मुखवस्त्रिका चली है तहा२ ही पूर्वोक्त मुखपे बांधनी ही

समझो क्योंकि उसका नाम ही मुख वस्त्रिका है परन्तु तुम बताओ कि हाथ वस्त्रिका कहां से चली है? अरे! भाई! तुमने तो अपनी तरफ से मुह खोलने के हठ में बहुतेरे सूत्रों में से अर्थ का अनर्थ करके लिखा है जैसे मुख पत्ति चर्चा पोथी बूटे राय जी की रची हुई छपी अहमदाबाद वि०सँव्वत१९३४ में जिस की पृष्ठ१४५ में लिखा है कणोट्ठिया एवा मुह-णंत गेणवा विणा इरीयं पड़िकम्मे मिछुकड़ पुरिमड्ढंवा ॥ महानिशीथनी चूलकामध्ये सूत्र ४५मा अस्यार्थः क०मुखपत्तिकन्ना में थापण करीने वि०तथा मुख पत्ति आदिक सुंमुख ढांके विनाई जो इरियावहि पड़िकमेतो दंड आवे एतलै मुखढांकीने इरियावहि पड़िकमें तो दंड आवै नही इहांपण कन्ना विषे मुखपत्ति

थापवाना दंड कयाछे इस प्रमाणते एही संभव होता है मुख बाधणाछे ते आपणा छंदाछे इति ॥

यह देखो कैसा अर्थका अनर्थ करदिया है क्योंकि पाठ में तो एक भेद है और अर्थ में दो भेद कर दिए हैं सो अब हम पाठ और अर्थ लिखदिखाते हैं पाठ ॥ कर्णोट्ठिया एवा मुहणत गेणवा विणा इरीय पडिकम्मे मिछुकड पुरिमड्ढवा॥ अर्थ (कणोठियाएवा) कानों में स्थापन करे (विण) विना याने कानों में बांधे बिना क्या चीज बांधे विना (मुहणतगेणवा) मुखपत्ति याने कानों में मुखपत्ति बांधे विना (इरीयपडिकम्मे) इरिआवहिपड़िकम्मेतो (मिछुकडं) मिच्छा मिदुक्कडदे (पुरिमड्ढवा) अथवा पुरिमड्ढ याने दो पहर तप का दंड आवे इत्यर्थ इस

में साफ लिखा है,कि मुखपत्ति कान में बांध-
नी चाहिए यदि कानमें नहीं बांधे तो दंड
आवै फेर पूर्वोक्त पुस्तक की पृष्ट १०२ वीं
पर लिखा है कि उत्तराध्ययन अध्ययन १२
वां गाथा ६ठी "हरकेशीवल साधु को ब्राह्मण
कहते भए कि तेरे होठ मोटे हैं तेरे दान्त
बड़े २ हैं इत्यादि परन्तु सूत्र में देखते हैं तो यह
अर्थ स्वप्नान्तर्गत भी नहीं है ॥

सो सूत्र यह है "कयरे आगच्छइ दित्त
रूवे काले विगरालेय फोक्कनासे उम्म चेलए
पसुं पिसाए भूए संकर दूसं परि हरिय कण्ठे'

अर्थ—कौन है तू आंवदा चलाजा
दैत्य रूप काला विकराल बैठी हुई नासिका
निःसार वस्त्र रेत से भरे, पिशाच के समान
रूड़ी के नाखे समान वस्त्र पहरे है कण्ठ

इत्यर्थ सो देखलो पूर्वक अर्थ कहा है अपितु नहीं । तो फिर तुम ऐसे अनर्थ अर्थात् झूठे अर्थ करके लोकों को बहकाते हो और फिर " गोतमस्वामीजी ने मुखपोतिया से मुख बाधा है ऐसे लिखते हो परन्तु यों नहीं समझते कि सोलह अंगुलमात्र का अनुमान खण्डुआ वस्त्र का मुखपोतिआ होता है सो उस से मुख कैसे बाधा होगा इत्यादि चर्चा घणी है परन्तु घणे अर्थ और की और तरह करे हैं ॥

और इनके दादागुरु मणि विजय जी रत्न विजय जी आदिक परिग्रहधारी हुए हैं, क्योंकि इनके गुरु बूटेराव जी ने मुखपत्ति चर्चा पोथी अहमदावाद के छापे की में पृष्ठ ५९ में लिखा है कि मणिविजय जी ने चढावे

के रुपये प्रमाण करे और जब मुझे बाई रुपये देनेलगी तो मैंने नहीं लिये । इत्यर्थः । और बूटेराव बुद्धविजय जी ने तपागच्छ को अपने मन से बिलकुल अच्छा नहीं जाना था परन्तु मुख तो खोल ही चुके थे जब कहीं पैर नहीं लगते देखे तब साहूकारों के लिहाज से तपागच्छ धारलिया यह स्वरूप उन्हीं की बनाई हुई पूर्वक मुखपत्ति चर्चापोथी की पृष्ठ ३४ वीं से लेकर ४४ । ४५ । ४६ वीं तक बांचने से ख्याल करके मालूम करलेना हम क्या लिखें, और फिर पृष्ठ ६९ । ७० । ७१वीं पर बूटेराव लिखते हैं कि १० वें अछेरे में असंयतियों की पूजा हुई है सो ऐसे है कि ज्ञान का नाम लेकर धन रक्खेंगे, संवेगी कहावेंगे यात्रा करेंगे, साधु और साध्वी एक मकान में

पडिक्कमणा करेंगे, और दीवा बालेंगे, इत्यादि सो तुम आप ही समझलो कि यह ढूंटेराव जी क्या लिखते हैं ॥

और फिर इनके चाल चलन बहुत से तो ९ नवम निन्हव से मिलते हैं क्योंकि आत्मा राम ने भी अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रंथ के द्वितीय खंड पृष्ठ ९२ वीं पर लिखा है कि ९ नवम निन्हव अच्छा है, हमारे से एक दो बात का फर्क है" इत्यादि० सो एक दो बात का फर्क तो इस वास्ते कहते हैं कि कभी हम ही को लोक निन्हव न कह देवें, असल में एक ही है॥

इत्यादि० कथन हमने उन्ही के बनाये हुए ग्रंथों में से लिखे हैं सत्याऽसत्य को विद्वान् लोग विचारलेंगे भूल चूक मिच्छामि दुक्कडम् ॥

इति प्रथमो भागः ॥

परम सज्जन और प्रेमी महात्माओं को विदित हो कि यदि कोई पूर्वपक्षी प्रथमभाग को बांच कर ऐसे कहे कि देखो उत्तर पक्षी ने जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ में के गुण तो अङ्गीकार किये नहीं और जो कोई अवगुण थे वे अङ्गीकार किये हैं छलनीवत्। तो उसको हम उत्तर देते हैं, कि हे भाई! हम अवगुण के ग्राही नहीं हैं, क्योंकि हम तो पहिले ही पत्र ७१ वें में लिखआये हैं कि "जो सनातन सूत्रानुसार जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ में कथन हैं सो यथार्थ और सत्य हैं तो फिर अवगुण ग्राही कैसे जानें?

अरे भाई! हमतो गुण को अङ्गीकार करते हैं और अवगुण को निकाल के फैंक देते हैं, छाजवत्। जैसे किसी पुरुष ने अच्छी सुफ़ेद कनक अर्थात् गेहूं पक्वान्न के वास्ते

मैदा करने को देनी चाही तब किसी बुद्धिमान की निगाह में वह कनक चढगई तो उस बुद्धिमान ने कहा कि अरे ! इन गेहुंओं में तो कंकर रले हुए हैं इन से पकान्न किर किरा हो जावेगा सो इन ककरों को निकाल के मैदा कराना चाहिये । तब वह पूर्वक पुरुष कहता भया कि इसमें कंकर कहां हैं ? तो फिर बुद्धिमान ने कहा कि तुमे गर्मी के गुबारे करके कम नज़र आता है, ला मैं निकाल कर तेरेहाथ में धरदू ॥

ऐसे ही यह भी जानलो इत्यर्थ ॥

॥ श्रीरस्तु जगता मिति ॥

अथ द्वितीय भाग प्रारम्भः

॥ अथ प्रथमं देवाङ्गम् ॥

अथ १ प्रथम तो समदृष्टि विवेकवान् पुरुष समय सूत्र द्वारा देवों के स्वरूप की लक्ष्यता करें ते देव कौन से हैं :—

श्री अरिहन्त देव अर्थात् अरि नाम वैरी (अज्ञान मोह रूप) हन्त नाम तिनको हनके अरिहन्त नाम संज्ञा से प्रगट भये, तिन के अनन्त गुण कहे हैं परन्तु सुयगडाङ्गजी, समवायाङ्गजी, उववाईजी, भगवतीजी, इत्यादि अनेक सूत्रों में पण्डित श्री ५ सुधर्मस्वामीजी ने कुछक गुण वर्णन करे हैं, यथा सुयगडाङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध के ६ ठे अध्ययन की

२६ वीं गाथा "कोहंचमाणचतहेव मायं लोभं च उत्य अज्झत्य दोपा एयाणि वन्ता अरहा महेसी नकुव्वई पावन कार वेई ॥१॥ अस्यार्थ सुगम ॥

ऐसे अरिहन्त देवजी के गुण परम त्यागी अर्थात् विषय भोग सावद्य व्यापारादि सर्व्वारम्भ परित्यागी अथवा परमवैरागी राग द्वेष से निवृत्त वीतराग केवल ज्ञानी के० अर्थात् सम्पूर्ण लोकालोक, आदि मध्य, अन्त अतीत अनागत वर्तमान (तस्यकृत्स्नस्य) करामलक वत् समय२ निरन्तर ज्ञान दृष्टि से देखते भए, अथवा परम दान्ति परम शान्ति महामहान् महानियामकमहास्वर्थवाह परमोपकारी परमगोप परमपूज्य परमपावन परम सुशील परम पण्डित परमात्मा पुरुषोत्तम इत्यादि गुणों का स्मरण अर्थात् जप करे ॥

(२) अथ गुरु अंग सो दूसरे, निग्रन्थि गुरु जो द्रव्य गांठ बांधे नहीं, अर्थात् पक्षी की तरह किसी पदार्थ का संचय करे नहीं और भाव गांठ नहीं अर्थात् लोभ कपट को छोड़े सो ऐसे निग्रन्थि गुरु कनक कामिनी के त्यागी निस्पृही अर्थात् जैनका साधु साधक सूई मात्र भी धातु ग्रहण न करे और एक दिन की बालिका को भी अर्थात् स्त्री को हाथ न लगावे ९ वाड़ ब्रह्मचारी ॥

(१) पहली वाड़ ब्रह्मचर्य की शीलवान पुरुष जिसमकान में स्त्री वा पशुजाति की स्त्री वा नपुंसक (हीजड़ा) रहताहो उसमें वास करै नहीं याने एकांत स्थान इकट्ठे रहे नहीं क्योंकि विकार जागने का कारण है यथा ॥

दोहा-विद्या बुद्धि विवेकबल यद्यपि होत अपार

मन्मथ रहे न जगेविन जहांएकनरनार ॥
तथा श्लोक गुहायाहरिर्यत्र वासकरोति,
प्रशस्तो न तत्रास्ति वासो मृगाणाम् ॥ गृहे
यत्रनारी निवासकरोति, प्रशस्तो न तत्रास्ति
वासो मुनीनाम् । १ ।

अर्थ (गुहाया) जिस गुफा में (हरिर्) शेर रहता हो (प्रशस्त) भला नहीं उस गुफा में मृगों को रहना क्योंकि प्राणों के नाश होने का कारण है इसी तरह जिस गृह में नारी रहती हो उसगृह (घर) में (मुनीनाम्) साधुओंको रहना (प्रशस्त) भला नहीं ब्रह्मचर्य के नाश होने का कारण है ऐसे ही स्त्री को पुरुष के पक्ष में समझलेना ॥

(२) दूसरी वाड ब्रह्मचर्य की शीलवान पुरुष केवल स्त्रियों की मंडली में कथा व्याख्यान

करै नहीं पुरुष भी होवे तो व्याख्यान करे अथवा स्त्री के रूप यौवन शृंगार आदिक की कथा (तारीफ) करै नहीं पूर्वक विकार जागने का कारण है यथा नीबू की खटाई का व्याख्यान मुंह में याने दांढाओं में पानी आजाने का कारण है ऐसे ही स्त्री केवल पुरुषों की मंडली में व्याख्यान करै नहीं स्त्रीयें भी होवें तो व्या-ख्यान करै तथा पुरुष के रूप यौवन शृंगारादि का व्याख्यान करे नहीं यदि वैराग्य के हेतु शरीर की अपावनता अनित्यता दर्शाने के लिए व्याख्यान करे तो दोष नहीं॥

(३) तीसरी वाड़ ब्रह्मचर्य की शीलवान पुरुष स्त्री सहित एक आसन पै इकट्ठे बैठे नहीं क्यों कि विकार का कारण है यथा अग्नि के निकट घृत का रखना पिंघल जाने का कारण है॥

(४) चौथी वाड ब्रह्मचर्य की शीलवान पुरुष स्त्री की आखों से आंखें मिला के झांके नहीं क्योंकि विकार का कारण है यथा सूर्य्य की तर्फ दृष्टि मिलाने से आंखों में पानी आने का कारण है यदि परोपकार के लिये उपदेश करना होवे तो जैसे सुसराल (सोहरे) घर जाती हुई पुत्री को पिता निर्विकार भाव नीची दृष्टि करके शिक्षा देता है तथा जवान पुत्र दिसावर को जाता हुआ माता को नमस्कार करने आवे तब माता निर्विकार भाव नीची दृष्टि करके शिक्षा देती है ऐसे शिक्षा देवे ॥

(५) पांचवी वाड़ ब्रह्मचर्य्य की शीलवान पुरुष जहा स्त्री पुरुष परस्पर काम आदि क्रीडा करते हों वहां रहे नहीं देखे नहीं सुने नहीं

क्योंकि विकार का कारण है यथा मयूर को गाजके सुनने से उन्माद का कारण है ॥

(६) छठी वाड़ ब्रह्मचर्य की शीलवान पुरुष पूर्व (पहले) किये हुए कामादि भोगों को याद में लावे नहीं क्योंकि विकार का कारण है यथा सर्प्प काटे के जहर को याद करने से लहर चढ़ने का कारण है ॥

(७) सातवीं वाड़ ब्रह्मचर्य की शीलवान पुरुष काम वृद्धि कारक औषधियें आदिक पुष्टआहार करे नहीं क्योंकि विकार का कारण है यथा अग्नि में घृत सींचने से अग्नि तेज होने का कारण है ॥

(८) आठवीं वाड़ ब्रह्मचर्य की शीलवान पुरुष मर्यादा से अधिक दाब २ के आहार करे नहीं क्योंकि पूर्वोक्त इन्द्रिय विकार वृद्धि का

कारण है यथा अग्नि में ईंधन (काठ) का गेरना अग्नि वधाने का कारण है ॥

(९) नोंमीं वाड ब्रह्मचर्य का शीलवान पुरुष शृगार चटकेमटके करे नहीं क्योंकि काम की तर्फ चित्तको खेंचने का कारण है यथा सफेद चमकदार वस्त्रके खंड याने चिट्टी लीर में ठीकरी वांधके फेंकदे तो जो देखे सो लोभके कारण उठा लेवे और मैले वस्त्र में यदि मोहर (असर्फी) भी वांधके फेंकदे तो भी किसी को लोभ जागे नहीं याने उठावे नहीं इत्यर्थ अपितु इस यत्न से ब्रह्मचर्य रत्न रह सक्ता है ॥

और ऐसे ही साध्वी को पुरुष के पक्ष में जानना और क्षाति मुत्ती आदिक १० दस प्रकार के यति धर्म के धर्ता जहा ठाणागे तथा

उत्तराध्ययन १९ वें गाथा ८९ मी निमम्मो निरहंकारो, निसंगो चत्त गारवो, समोय सब्ब भूएसु, तस्सेसु थावरे सुअ ॥ १ ॥

लाभा लाभे सुहे दुःखे, जीवीए मरणे तहा, समोनिन्दा पसंसासु तहा माणाव माणयो ॥२॥

अस्यार्थः सुगमः तथा ५ सुमति ३ गुप्ति के धर्ता अर्थात् (१) प्रथम ईर्षा सुमति (सो) साढ़े तीन हाथ प्रमाण क्षेत्र आगे को देख-ता हुआ चले ॥

और (२) दूसरी भाषा सुमति (सो) भाषा विचार के बोले और किसी को दुःखदाई मर्मकारी और झूंठी भाषा न बोले ॥

और (३) तीसरी एषणा सुमति (सो) साधु ४ प्रकार का पदार्थ निर्दोष आज्ञा सहित लेवे जैसेकि १ प्रथम तो आहार पानी

निर्दोष, जो पुरुष साधु के निमित्त फला-
दिक छेदे नहीं छिदावे नहीं छेदते को भला
जाने नहीं और भेदे नहीं०२ और पचे नहीं
३ जो गृहस्थी ने अपने कुटुम्ब के निमित्त
अन्न पानी का आरम्भ किया हो, सरस वा नीरस
हो तैसा ही ग्रहण करे सो यह तो द्रव्य निर्दोष
और भाव निर्दोष, सो ऐसा सरस न खाय कि
जिससे काम विकार रोग विकार तथा अति आ-
लस्य उत्पन्न होय और ऐसा नीरस भी न खाय
कि जिससे क्षुधा निवृत्ति न होय और सहाय
ध्यान न बने और रोग उत्पन्न होय तथा दुर्गछा
उपजे इत्यर्थ और २ दूसरे वस्त्र पात्र निर्दोष
सो साधु के निमित्त बुनवाया न होय तथा
मोल लिया न होय जो गृहस्थी ने अपने
निमित्त बुनवाया होय वा मोल लिया होय

अल्प मौल्य वा बहु मौल्य हो तैसाही ग्रहण
करे सो यह तो द्रव्य निर्दोष और भाव निर्दोष
सो ऐसा बहु मूल्य भी न होय कि जो अजान
मनुष्य को द्रव्यधारक का विश्वास होय तथा
चोर पीछा करे अथवा स्वभाव में मान प्रकट
होय और ऐसा अल्प मूल्य निःसार भी न
होय कि जिससे स्वभाव तथा परजन को
दुर्गछा उपजे इत्यर्थः और ३ तीसरे उपाश्रय
अर्थात् स्थान निर्दोष (सो) साधु के निमित्त
मकान बनवाया न होय तथा मोल लिया न
होय फिर गृहस्थी के वर्त्तने से जियादा होय
तो उसकी आज्ञा से ग्रहण करे सो यह तो
द्रव्य निर्दोष, और भाव निर्दोष, सो ऐसा
चित्रशाली आदिक न होय कि जिससे मन
अनंग (कामदेव) और विकारादि भजे

तथा सराग वेश्या आदिक का पडोस न होय और ऐसा निषिद्ध टूटा फूटा मकान भी न होय जो चढते उतरते गिर२ पड़े तथा मट्टी गिर २ पड़े तथा जीव जतु आदि घणे होंय तथा दु खदाई होय अप्रतीत कारी होय इत्यर्थ ॥ और चौथे ४ शिष्य शाखा निर्दोप सो लडका लड़की, कुजात न होय तथा माता पिता की जात अधूरी न होय तथा अधा बहरा लुजा न होय तथा उमर का बहुत छोटा न होय तथा बहुत शिथिल वूढा न होय (यथा ठाणागे व्यवहारे) तथा मोल का न होय तथा चोरी का वा विना आज्ञा का न होय तो फिर जाति मान् कुलवान् वैराग्यवान् माता पिता आदिक की आज्ञा सहित हो तो उसे चेला

करे सो यह तो द्रव्य निर्दोष, और भाव निर्दोष, सो अति क्रोधी न होय अति कामी न होय अति लालची न होय क्योंकि जिसके संग में क्लेश और निन्दा होय यथा उत्तराध्ययने इत्यर्थः॥ और ४ चौथी आदानभण्ड मत नक्षेपणीया सुमति सो भंड उपकरण वस्त्र पात्र मर्यादा सहित रक्खे और गृहस्थी के पास रक्खे नहीं अर्थात् गृहस्थी के घर रक्खे नहीं और दो वक्त प्रतिलेखना करे और ५ पांचमी उच्चार पासवण लेख जल सघेण परिठावणि सु० ॥ सो देह के मैल एकांत पृथक् सूकी भूमिका में गेरे जहां कोई जीव जन्तु गड़ नहीं और फस के मरे नहीं इत्यर्थः। और ३ गुप्ति। १ मन गुप्ति सो मनके अशुद्ध संकल्पों को रोके॥ २ वचन गुप्ति सो वचन आलपाल बोले नहीं, अर्थात्

विना निजगुण लाभ के बोले नहीं। और ३ काय गुप्ति सो काय की चपलता और ममता को त्यागे ॥ सो ये ५ सुमति और ३ गुप्ति के धर्त्ता साधु जन साधकात्मा हों तिनकी सेवा भक्ति करे अर्थात् फ्रासूक एषणीक पूर्वक अन्नपानी देकर तथा वस्त्रपात्र देकर तथा अपने वर्त्तने से ज्यादा मकान हो तो मकान देकर तथा बेटा बेटी वैराग्य प्राप्ति हो तो शिष्य रूप भिक्षादे कर गुरु की भक्ति करे और सुख साता पूछे और रोगादि के कारण साधुको देखे तो हकीमसे पूछे के निर्दोष औषधि की दलाली करावे ॥ और देशान्तर गये साधु की भेट हो जाय तो अपने क्षेत्र में आने की विनति करे और नगर आते मुनिराज को सुन के भक्त विनय करे और क्षेत्र में रहते हुए साधु की पूर्वक सेवा।

करे और उसके मुखारविंद से शास्त्रार्थ न्याय वाक्य विलास सुने तथा परिवारी जनों को तथा अन्य नर नारियों को प्रेरणा करे कि अरे ! भाइयो ! तुम शास्त्र सुनों और श्रद्धा करो क्योंकि सन्त समागम दुर्लभ होता है इत्यादि० और जाते हुए साधु की प्रदक्षिण रूप भेट देकर दर्शन करे विनय साधे यथा सूत्र विनय द्वारम् ॥ अगर इसमें कोई मतपक्षी तर्क करे कि साधु को लेने जाने में क्या हिंसा नहीं होती है ? तो उसको यह उत्तर देना चाहिये कि विना उपयोग चले तो हिंसा होती है और सूत्र का न्याय तो ऐसे है कि यथा दशवै कालिके उक्तंच " जयंचरे जयंचिठे " इति वचनात् ॥ और इस पर कोई फिर तर्क करे कि हम भी तो फूल आदिक जिन भक्ति

के निमित्त यत्न से ही तोडते हैं ॥ तो फिर उसको यह उत्तर देना चाहिये कि जब तोड ही लिया तो फिर यत्न काहे का हुआ यथा किसी की गर्दन तो उतारी परन्तु यत्न से उतारी। उत्तरम्—अफसोस है, कि जब काठ ही गेरा तो फिर यत्न काहे का हुआ । खैर तुम्हारे लेखे यत्न ही हुआ सही, परन्तु शास्त्र में तो भगवत् की सेवा में फल फूल चढाने की आज्ञा है नहीं क्योंकि सूत्र दशा श्रुत स्कन्ध जी तथा उववाई जी तथा विवहाप्रज्ञप्ति जी में ऐसा लिखा है कि " जब भगवान् के समवसरण में सेवक जन सेवा के निमित्त आवे तब सुचित द्रव्य अर्थात् जीव सहित वस्तु को बाहर ही छोड़ दे जहा तक भगवत् जी के विराजमान होने की समवस-

रण की मर्यादा के भीतर न लेजाय सोई हम तुम्हारे से पूछते हैं कि हे मतावलम्बी ! तुम फूल आदि सुचित्त द्रव्य से पूजा किस न्याय से मुख्य रखते हो अथवा शायद तुम फूलों को और फलों को सुचित्त न मानते होगे क्योंकि जब सूत्र में मनाई है और तुम कहते हो कि जितने घने २ चढ़ावे उतने ही घनी आज्ञा के आराधक होय अर्थात् लाभ होय ॥ तर्क०

अगर तुम यह कुटिलता ग्रहण करोगे कि अपने पहरने खाने के निमित्त सुचित्त द्रव्य ले जाने समवसरण के मनाई है परन्तु भगवानकी भक्ति निमित्त मनाई नहीं है।

उत्तरपक्षः—सूत्र में तो ऐसे नहीं है और स्वकपोल कल्पित कुछ बना धरो अगर है तो

पाठ दिखाओ कि किसी सनातन सूत्र में लिखा हो कि किसी सेवक ने वीतराग भगवान जी की फल फूलों से पूजा करी हो यदि तुम देवों की भुलावन दोगे तो हम नहीं मानेंगे क्योंकि देवों का जीत व्यवहार कुछ और ही है तदपि देवताओं के कथन में भी अरिहन्त हुए पीछे सुचित्त फूलोंका पाठ नहीं है यथा राजप्रश्नी सूत्र "पुष्प वद्दलवियोवइत्ता" तथा मानतुंग कृतभक्तामर श्लोक ऊन्नेंद्रहेम नव पंकज पुजकान्तिइत्यादि॰इति।

सो साधु के लेने जाने में तो षट्काय की हिंसा रूप आरम्भ पूजा प्रतिष्ठा कहां से सहीह हो जावेगा फिर पूर्वक कथनम और जो श्रावक ने दिशावर को चिट्ठी लिखनी हो तो तिस में साधु साध्वी अथवा श्रावक

श्राविका के गुणों की महिमा लिखे जैसेकि अमुक साधु वा साध्वी जी ने तथा अमुक श्रावक वा श्राविका ने अमुक त्याग करा है रस आदिक का। तथा अमुक तप किया है इन्द्रिय दमन आदिक तथा ताप शीत सहन आदिक तथा अनशन आदिक इत्यादि तथा अमुक श्रावक ने छती सक्त छती योगवाई ब्रह्मचर्य आदि चार खन्ध माहला खन्ध अ-ङ्गीकार किया है यथा १ रात्रीभोजन का त्याग (रात का चौविहार) २ मैथुन का त्याग ३ हरी लीलोती का त्याग ४ सचित्त वस्तु का त्याग इत्यादि देशान्तरों के विषे महिमा विस्तारे क्योंकि ऐसे कथन को सुन के हर एक मजहब वाले लोग तथा अनजान लोक भी आश्चर्य को प्राप्त होंगे कि देखो जैनी

लोग स्ववशवर्त्ती, स्त्री आदिक के भोग को तज कर ब्रह्मचारी हो जाते हैं सो यह जैन धर्म की प्रभावना है । अथ ३तृतीयधर्म अग धर्म जो दुर्गति पड़ता धारई इति धर्म ते धर्म क्षमा दया रूप धर्म तथा सम्वर निर्जरा रूप धर्म यथा सत्येनोत्पद्यते धर्मो दया दानेन वर्द्धते । क्षमया स्थाप्यते धर्म्म क्रोध लोभा दिनस्यति ॥१॥ अर्थात् १ धर्म का पिता ज्ञान २माता दया ३ भाई सत्य ४ बहन सुबुद्धि ५ स्त्री दमितेन्द्रिय ६ पुत्र सुख ७ घर क्षमा ८ बैरी क्रोध लोभ ॥१॥ ते धर्म आचरण की विधि लिखते हैं । प्रथम तो पूर्वक निग्रन्थ गुरु से भक्ति रूप प्रीति समाचरे सो गुरुजी के मुखारविन्द से शास्त्रादि उपदेश सुन के बोध को प्राप्त करे और नो तत्व षट द्रव्य के

रूप को बूझे तिस के विषय प्रथम तो आत्मा सत्यस्वरूप चितानन्द का भाव एकान्त वास्तव में स्थितकरे जैसे कि मैं चैतन्य अरूपी अखंडित अविनाशी एकांत कर्म का कर्ता और भोक्ता हूं और कोई दूसरे ईश्वरादि के करे कर्म का मैं नहीं भोक्ता हूं यानी ईश्वर का दिया सुख दुःख नहीं भोक्ता हूं और किसी सज्जनादि के करे कर्म का मैं नहीं भोक्ता यानी पुत्रादिक की जलांजली दी हुई नहीं भोक्ता हूं, मैं स्वआत्म सुख दुःख रूप कर्म का कर्ता और उसी कृत कर्म का फल कर्मों के निमित्तों से भोक्ता हूं इति ॥

(२) दूसरे परआत्मा सो अनन्त संसारी जीव चराचर रूप सूक्ष्म स्थूल सर्व अन्य २ अपने२ सुख दुःख रूप कर्म के कर्त्ता और

भोक्ता हैं ॥ (३) तीसरे परमात्मा सो जिस को लोक ईश्वर तथा परमेश्वर वा ब्रह्म कहते हैं सो उस को जैन में सिद्ध कहते हैं। सो (सिद्ध) निरंजन निराकार अखंडित अविनाशी अलक्ष्य अरूपी कर्म कलंक से रहित अनादि अनन्त है यथा जैन मूल सूत्रे समवायांगे "सव्वनूण सव्वदसीण शिवमयलमरुयमणन्त मक्खय मव्वावाह इत्यादि ॥ और एक न्याय से सादि अनन्त है सो इस रीति से है कि शास्त्र में दो प्रकार का जीव का स्वभाव कहा है जैसे एक तो स्वभाव में अभव्य जीव है अर्थात् अनादि, अनंत कर्म सहित है और दूसरे स्वभाव में भव्य जीव है अर्थात् अनादि सांत कर्म सहित है सोई जो अभव्य जीव है उसको तो मोक्ष होती नहीं,

क्योंकि अभव्य जीव अनादि, अनंत, कर्म सहित है तस्मात् कारणात् गुण घाति कर्म अर्थात् अज्ञान रूप भ्रम दूर हुए विना बोध होता नहीं और बोध हुए विना काम क्रोधादि प्रकृति दूर होती नहीं और काम क्रोध हटे विना पर पीड़ा रूप हिंसा मिथ्यादि आरम्भ की निवृत्ति होती नहीं और आरम्भ की निवृत्ति हुए विना केवल बोध होता नहीं और केवल बोध हुए विना मोक्ष होता नहीं इत्यर्थः ॥

और जो भव्य जीव है तिस को स्थानागत अर्थात न्यायमार्ग पड़े को मोक्ष होता है नहीं तो नहीं क्योंकि भव्य जीव अनादि सांत कर्म सहित है तस्मात् कारणात् पूर्व अज्ञानादि भ्रम के नाश होने से बोध को

प्राप्त होते भए और बोध को प्राप्त होके फिर
पूर्वक आरम्भ से निवृत्त होके तप जप रूप
शुद्ध प्रवृत्ति में प्रवर्ते के पूर्व कर्मों का तो
नाश कर देते भये और आगे को काम
क्रोधादि प्रवृत्ति के अभाव से हिंसादि सर्वा
रम्भ प्रति त्याग के प्रभाव से नया कर्म उ-
त्पन्न होता नहीं तस्मात् कारणात् मोक्ष अ-
र्थात् सिद्ध हो जाते हैं सोई ऐसे सादि अ-
नन्त सिद्ध होते भए जैसेकि अपने २ मता
वलम्बी हर एक नर नारी तप जप और पू-
जन धूपन सन्ध्या गायत्री अथवा निमाज
आदि अनेक उपकर्म करते हैं सो कई तो
हरि आदिक की सेवा भक्ति में ही लीन हुआ
चाहते हैं कि हमको भक्ति ही में रम रहना
चाहिये और कितनेक आत्म रूप ज्योति

रूप हुआ चाहते हैं और कितनेक खुदा के नजदीक हुआ चाहते हैं सो हे भाई यही रीति सादि अनंत सिद्ध अर्थात् परमेश्वर होने की है ॥ अथ (४) स्व पर मत तर्क अंग और फिर कितनेक कहते हैं कि हम परमेश्वर यानि खुदा तो होना नहीं चाहते हैं हम तो खिदमत यानि भक्ति में नजदीक हुआ चाहते हैं तो फिर उनको ऐसे पूछना चाहिये कि साहूकार के नजदीक बैठने से तो साहूकारी का सुख प्राप्त न होगा, साहूकार की सेवा करने का तो यही मकसद है कि साहूकार तुष्ट होकर साहूकार ही कर देवे दृष्टांत जैसेकि कोई रंक जन साहूकार की टहल बहुत काल तक करता रहा तो फिर एक दिन साहूकार तुष्ट होकर बोला कि हे

भाई ! जो मागना है सो मांग, तो वह एक बोला कि मैं तेरी टहल करनी चाहता हू तो फिर वह साहूकार मुस्करा कर बोला कि अरे! अहमक टहल तो कर ही रहा है मेरे तुष्ट होने का तुझे क्या लाभ हुआ तो फिर वह एक बोला कि मैं ते रे नजदीक यानि पड़ोस रहा चाहता हू तो फिर साहूकार क हने लगा कि मेरे पडोस रहने से क्या तेरा मुख मीठा होजावेगा और क्या तुझे बल रूप धनादि सुख मिल जावेगा ? अरे मूर्ख ! तू मेरे तुष्ट होने पर यह मांग कि मैं भी साहूकार और सुखी हो जाऊ और दरिद्रता के दु ख से छूट जाउ औरमेरी प्रीति यानि कृपा होने का भी यही सार है कि तुझे अपना भाई यानि अपने सदृश साहूकार और

सुखी करलूं और तेरा नौकर कहना और द-
रिद्रता का दुःख दूर करूं इत्यर्थम् । सोई इस
दृष्टांत बमूजिब तो तप जप और सत्य शील
दानादि का यही फल है कि कर्म कलंक से
निवृत्त होजाय और जन्म मरण की व्याधि
से निवृत्त होजाय अर्थात् परमेश्वर रूप पर-
मात्म व्यापी होरहे इति ।१। और फिर कित-
नेक मतपक्षी देवों को (इन्द्र) को परमेश्वर
मानते हैं जैसे धर्मराजवत् और कितनेक रा
जाओं को (वासुदेवों) को परमेश्वर मानते हैं
जैसे राजा रामचन्द्र अथवा कृष्ण वासुदेव जी
को । सोई उन पुरुषों को दीर्घ दृष्टि अर्थात्
परमात्म स्वरूप की तो खबर है नहीं क्योंकि
ये राजा आदि तो बली अर्थात् अवतार हुए
हैं, परन्तु परमेश्वर नहीं हैं, और जब वे अ-

वतार योगाभ्यासी होकर परमात्म पद को व्यापे हैं (सो) उस पद की उन पेट भराऊओं को खबर ही है नहीं ॥२॥ और कितनेक पुरुष ऐसे कहते हैं कि सिद्ध होके फिर वही मुद्द२ के अवतार धारण करते हैं सोई उन को पूर्वक सिद्धों की तो खबर है नहीं वे म तावलम्बी तो वैकुठ अर्थात् स्वर्गनिवासी दे- वताओं की अपेक्षा से कहते हैं क्योंकि स्वर्ग निवासी पलोपमसागरोपम की आयु भोग के अर्थात बहुत काल पीछे मनुष्य लोक अ- र्थात मृत्युलोक में उत्पन्न होते हैं इत्यर्थः।सोई हे भाई ! हम तुमको हितार्थ न्याय वचन से समझाते हैं कि सिद्ध मुद्दके अवतार नहीं धारते हैं, यदि मुदकर भी, जन्म मरण रहा तो सिद्ध अर्थात् मुक्तभाव क्या हुआ? क्यों

कि जब सकल कार्य सिद्ध ही हो चुके तो फिर जानबूझ कर स्वाधीन भला उपाधि में क्यों पड़ेगा, सुख में से छुटाके दुःख में तो कर्म गेरते हैं सोई सिद्धों के तो कर्म रहे नहीं जैसे शास्त्रों में कहा है कि "दग्धबीजं यथा युक्तं, प्रादुर्भवतिनांकुरम् । कर्म बीजं तथा दग्धं, नारोहाति भवांकुरम् ॥१॥ अस्यार्थः सुगमः॥३॥ फिर कितनेक मतावलम्बी पुरुष ऐसे कहते हैं, कि चिदानन्द सत्यात्म लोकालोक एक ही व्यापक है। उत्तरपक्षी। सो उन मतावलम्बियों का यह कथन शशशृङ्गवत् है क्योंकि जब एकही चिदानन्द तो फिर उपदेश किसको है और उपदेश देने वाला कौन है और सत्यादिक सुकृत करना किसके वास्ते है और मिथ्यात आदिक दुष्कृत किस के

वास्ते है और सुकृत दुष्कृत का कर्ता भोक्ता कौन है ? ॥४॥ और कितनेक पुरुष ऐसे कहते हैं, कि सत्यात्म चिदानन्द एक अंग रूप है और सर्व शरीर अर्थात् सर्व चराचर जीव तिसी के उपांग रूप हैं। उत्तरपक्षी, अरेभाई एक अंग में अनेक सुख दु खादि की अन्यान्य अवस्था कैसे सम्भव है ? जैसे कि एक हाथ और एक पैर के तो तप चढा और दूसरे को नहीं, अपितु ऐसे नहीं, सर्व ही अंग को दु ख सुख सम ही व्यापता है सो सर्व जीवों को सुख दु ख एकसम होय तो तुम्हारा पूर्वक कथन सहीह है न तो नहीं ॥५॥ और कितनेक मतावलम्वी शशि घट विम्वरूप दृष्टांत मुख्य रखते हैं कि जैसे आकाश में एक चन्द्र है और जल के घडे जि

तने हों उनमें उतने ही चन्द्रबिम्ब भासे हैं सो ऐसे ही एक चिदानन्द सर्व अंगों में भासमान है। उत्तर यह भी तुम्हारा कहना पूर्वक शून्य है क्योंकि चन्द्र के बिम्ब सर्व घटों में भास होते हैं, परन्तु सम ही भासमान होते हैं, जैसे कि द्वितीया का होय तो द्वितीया का और पूर्णिमा का होय तो पूर्णिमा का परन्तु यह नहीं होता कि किसी घट में तो द्वितीया के चन्द्र का बिम्ब और किसी में पूर्णिमा के चन्द्र का बिम्ब हो । सो तुम्हारे कहने बमूजिब तो सर्व शरीरों में एकही चैतन्य भासमान है तो फिर सर्व शरीरों की एक ही अवस्था अर्थात् एक ही सरीखा बल वर्णमति स्वभाव और सुख दुःख होना चाहिये सो एक सम है नहीं तो तुम्हारा दृष्टांत आलमाल हुआ ॥ ६ ॥ और

कितनेक मतांतरी ऐसे कहते हैं, कि आकाश तो एक ही है, परन्तु भिन्न२ घड़ों में भिन्न२ अन्तर है ऐसे ही चैतन्य, आकाशवत् एक ही है, परन्तु भिन्न २ शरीरों में भिन्न भास मान है और घटरूप शरीरके नाश होने पर चैतन्य आकाश रूप अविनाशी एक ही है उत्तरपक्षी । यह भी कहना तुम्हारा बावले की लंगोटी वत् है । क्योंकि जब तुम्हारी यह श्रद्धा है कि शरीर के विनाश होने पर अ-र्थात् मर जाने पर चैतन्य आकाश रूप सत्य में सत्य व्यापी स्वभाव ही होजाता है तो फिर तुम्हारा आर्यसमाज समाजना और सत्य समाधि का उपदेश करना निरर्थक है क्यों-कि आर्य अनार्य और ऊच नीच सर्व ही शरीर के त्याग के अंत में अर्थात् घटनाश

वत् मर जाने में सब ही मोक्ष होंगे अर्थात् आकाश में आकाश रूप हो रहेंगे तो फिर सत्य आदि धर्म का फल और मिथ्या आदि अधर्म का फल कौन पावेंगे और कहां भोगेंगे इत्यर्थम् ॥७॥ और कितनेक मतांतरी ऐसे कहते हैं कि जैसे साबत सीसे के विषे एक मुख दीखता है और जब सीसा फूट जाता है तब जितने सीसे के खंड होते हैं उतने ही मुख दीखते हैं सो ऐसे ही ब्रह्म तो एक ही है परन्तु ताही के अनेक खंड रूप सर्व अंगों के विषे चेतनता भासमान है ॥ उत्तरपक्षी । यह भी तुम्हारा कहना तुम्हारी ही मुख चपेटिका रूप है क्योंकि सर्व शास्त्रों के और सर्व मतों के विषय में यह वृत्तांत प्रगट है कि चिदानन्द सत्यात्मा अखण्डित अविनाशी है तौ फिर अखण्ड

पदार्थ के अनेक खण्ड कैसे भए इत्यर्थ ॥८॥ और ऐसे२ अनेक मतातरों के परस्पर विरोध और वाद विवाद रूप अनेक कथन लिख सक्ते हैं परन्तु यहां सक्षेप मात्र ही लिखे हैं जैसेकि वैदिकाभास (आर्या) लोक कहते हैं कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में पृष्ट ११७ में लिखा है कि जब यह कार्य्य रूप सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी तब एक ईश्वर और दूसरा जगत कारण अर्थात् जगत व-नाने की सामग्री मौजूद थी और आकाशा दि कुछ न था यहां तक कि परमाणु भी न थे। उत्तरपक्षी। सो यह भी कहना तुमारा ऐसा है कि जैसे वंध्या के पुत्र के आकाश के पुष्पों का सेहरा बांधा, क्योंकि जब ज-गत बनाने की सामग्री मौजूद थी तो फिर

ईश्वर को जगत का कर्ता किस न्याय से ठहराते हो सिवाय मेहनत के। जैसेकि मैदा घी और खांड त्यार है और कड़ाही, कड़छी और अग्नि लकड़ी सब त्यार हैं तो फिर हलुवा बनाने वाले की क्या सिद्धता है सिवाय परिश्रम अर्थात् मिहनत के। क्योंकि कर्ता तो पदार्थ का वह कहाता है कि जो निज शक्ति से अन हुई वस्तु अकस्मात् पैदा करके पदार्थ बनावे क्योंकि होती वस्तु का बनाना, सवारना तो मजदूरी है इत्यर्थः और फिर यह भी बताओ कि जगत बनाने की सामग्री क्या थी और परमाणु का क्या स्वरूप है और सामग्री काहे की बनती है और परमाणु किस काम आते हैं और जगत बनाने की सामग्री आकाश विना काहे में धरी

रही और फिर आकाश के विनाश होने पर
सामग्री कहां धरी रहेगी ॥९॥ और फिरआ-
र्यामास हठावलम्बी लोक प्रथम तो कहते हैं
कि सत्यात्म चिदानन्द एक ही है और फिर
कहते हैं, कि एक२ जीव तो अनादि अनं-
त कर्म सहित है और एक २ जीव अनादि
सांत कर्म सहित है ॥ उत्तरपक्षी । हम तुम
को पूछते हैं कि जब आत्मा एक ही है तो
फिर क्या आधी आत्मा को अनादि अनंत
कर्म लगे हुए हैं और आधी आत्मा को अ-
नादि सांत कर्म लगे हुए हैं ' सो तुम किस
न्याय से एक आत्मा मानते हो और दो
प्रकार के पूर्वक कर्मों के सहित जीव मानते
हो क्योंकि तुम्हारे पहले कहने को तुम्हारा
ही पिछला कहना उत्थाप रहा है। (कस्मात्

कारणात्) कि जीव अनन्त है, कोई तो अनादि अनंत कर्म सहित है और कोई अनादि सांत कर्म सहित है इत्यर्थ ॥१०॥ सो यही कथन जैनियों का है क्योंकि जो निष्पक्ष दृष्टि से देखो तो आत्मा (जीवों) का वही स्वरूप सत्य है कि जो हम ऊपर परआत्माधिकार में लिख आये हैं जैसे कि जीव अर्थात् चिदानन्द संसार में अनंत अन्यान्य है हां अलबत्ता सर्व जीवों का स्वरूप अर्थात् चेतना लक्षण एक सम ही है ॥

अथ ५ आत्म शिक्षांग

भो चैतन्य ! तत्व स्वरूप को विवेक द्वारा बोध कर और पूर्वक १ आत्म २ परात्म, ३ परमआत्म तत्व को बूझकर ऐसे विचार, कि मेरे वड़े भाग्य हैं जो मुझे सत्संग

और जड़ चैतन्य बोध रूप लाभ हुआ कैसे कि गुरु के वचन रूप दीपक से रज्जु को सर्प और सर्प को रज्जु इत्यादि भ्रमरूप अन्धकार का नाश हुआ और सम दृष्टि रूप नेत्रों करके यथार्थ भाव बंध मोक्ष रूप भास पडता है कि मैं भव्य जीव हूं अर्थात् अनादि सांत कर्म सहित हू क्योंकि कुछक अज्ञान कर्म का नाश हुआ है तो कुछक निज परका स्वरूप बोध हुआ सो यही अज्ञानादि कर्म के अन्त होने अर्थात् मोक्ष होने का रास्ता प्रकट हुआ है तो अब इस रस्ते पर चलन रूप पुरुपार्थ करना चाहिये क्योंकि मैं चिदानन्द सुख दु ख का वेदक और शब्द रूप, गंध, रस, स्पर्श का परीक्षक अनादि काल से चुरासी लाख योनि के विषय

परंपरा से कर्मों की वासनाओं द्वारा आगे को नये कर्म पैदा करने वाले काम क्रोध आदि को आचरता हुआ भवसागर के विषे भ्रमता चला आता हूं और अब मनुष्य जन्म इन्द्रिय संपूर्ण जाति कुल विवेक धन संयुक्त और देश काल शुद्ध स्थानागत किनारे आन लगा हूं तो अब परंपरा कर्मों की वासना के प्रभाव से कनक कामिनी के वश वर्ती हो कर हिंसा झूठ चोरी धरजा मरजा मानों जगत का धन लूट लूं इत्यादि अनाचार आचरण करके कभी फिर न लोभ मोह के प्रवाह में बह जाऊं सो अब धर्म कार्य में सावधान होऊं ऐसे विचार करके धर्म अर्थात् शुद्ध क्रिया रूप प्रवृत्ति सुकृत आचरण विधि के विषय में सावधान होवें इस लिये धर्म की

विधि लिखते हैं सो प्रथम १ कुदेव २ कुगुरु ३ कुधर्म को जाने क्योंकि झूठे सच्चे दोनों जानने चाहिये ॥ (सो)

(१)कुदेव सरागी काम क्रोध में वर्तमान यथा कामिनी सहित शस्त्र सहित जिनका कथन है और (२) कुगुरु सो कनक कामिनी के रखने वाले अर्थात् धन के और स्त्री के रखने वाले और जूती के पहरने वाले और डेरा बाध के एक जगह रहने वाले ते असाधु कुगुरु हैं क्योंकि यह पूर्वक गृहस्थी के कर्म हैं साधु को न चाहिये ॥

(३) कुधर्म सो जूती मूली अग्नि शस्त्रादि देने में क्योंकि जीव हिंसा होने से कुछ भगवान् के भजन का कारण नहीं है और तुलसी कन्या विवाहने में भी कोई

धर्म नहीं है क्योंकि जिसको माता कह चुके उसको मुड़२ के विवाहने में धर्म कैसे है अ-पितु महा अधर्म है यह तो मूर्खों के ठग खाने के राह अपनी कल्पना से निकाल धरे है कोई शास्त्र के अनुसार नहीं है औरशी-तला मसानी देवी भवानी मूर्ति पूजने में और बट (पिप्पल) वृक्ष पूंजने में और त्रस्य स्थावर की हिंसा रूप में इत्यादि अधर्म हैं कुछ आत्मिक सुखदाता नहीं है इसलिये इन तीनों को तजो और पूर्वक सुगुरु, सुदेव, सुधर्म को अङ्गीकार करो। (६) अथ छठा धर्म प्रवृत्ति अङ्ग, अथ धर्म कांक्षी प्रथम तो सूत्र भगवती जी सतक ८ उदेशे ५ वें में १४७ "पच्चखाण का अधिकार है तिस के अनुसार अतीतकाल" अर्थात् बीतगए काल

आश्री अलोवणा करे अर्थात् पूर्व जन्मांतरों के यथा तेली के १ तम्बोली के २ भडभूंजे के ३काछी के ४ माछी के ५ सिगलीगर के ६ वाजीगर के ७ कसाई के ८ दाई के ९ ठठयार के १० भठयार के ११ मनयार के १२ चम्मार के १३ कृपाण के १४इत्यादिक आर्य अनार्य जन्मों के पापों का पश्चात्ताप करें तथा इस जन्म के पाप अर्थात् अनाचार कर्म बालहत्या तथा विश्वासघात तथा धरोडमारण तथा ७ कुव्यसन तथा १५ कर्मादान जिन का स्वरूप आगे लिखेंगे अथवा कुगुरु, कुदेव कुधर्म, सेवन रूप मिथ्यात इत्यादि अकार्य करे होंय स्ववश अथवा परवश तो इनको सद्गुरु गभीर पण्डित पुरुषों के आगे ऐसे कहे कि मेरे से अमुक अपराध हुआ सो

मेरी भूल हुई और मैंने बुरा किया परन्तु अब नहीं करूंगा इत्यर्थः ॥ और दूसरे वर्तमान काल का सम्बर अर्थात् पूर्व कालमें जो अशुद्ध कर्म सेवन करे थे उन कर्मों का पश्चात्तापी होवे और आगे को शुद्ध कर्म अर्थात् दया सत्यादि अङ्गीकार करनेको उत्साहवान होवे और मिथ्यादि अशुद्ध योगों को रोकता हुआ है, तिस कारण वर्तमान काल में संवर वान होता भया है इत्यर्थः । और तीसरे अनागत अर्थात् जो काल अब तक आया नहीं है, आगे को आवेगा तिस आश्री पच्चखान अर्थात् हिंसा मिथ्यातादि कर्म का संपूर्ण तथा यथाशक्ति देश मात्र प्रहार करे तिस की विधि इस रीति से जान लेनी कि प्रथम तो षटकाय रूप जीव के स्वरूप की

लक्ष्यता करे कि जैसे १ पृथिवी काय जो पृ-
थिवी रूप शरीर स्थित एकेन्द्रिय जीव हैं क्यों
कि पृथ्वी सचेतन्य है, विना स्पर्श किसी
एक जाति के शस्त्र के और ऐसे ही २अप्प
काय जो पानी रूप शरीर स्थित जीव हैं,
और ऐसे ही ३ तेज काय जो अग्नि रूप
शरीर स्थित जीव हैं और ऐसे ही ४ वायु
काय जो वायु रूप शरीर स्थित जीव हैं और
ऐसे ही ५ बनस्पति काय जो बनस्पति रूप
शरीर स्थित जीव वृक्षादि सूक्ष्म स्थूल सर्व
हरि में जीव हैं तथा सूके बीजों में भी योनी
भूत वनस्पति जाति के जीव हैं यथा दश
वैकालिक सूत्र अध्ययन४ "(वणस्सइकाइया
सवीया चित्त मंतम रकाया) अर्थ वनस्पति
काय (सवीया) बीज सहित (चित्तमंत मर

काया) सचित्त कह्या और ६ त्रस्य काय (जो) जिन का त्रास भाव प्रकट माळूम होय यथा (१) द्वींद्रिय कीड़ा आदिक (२) त्रींद्रिय षट् पदी कीड़ी की जाति यूकालिक्षादि (३) चतुरिन्द्रिय माक्षिका मक्खी मच्छरादि और (४) पंचेन्द्रिय सो १ जलचर जीव मच्छादि २ स्थलचर जीव गाय घोड़ा आदि ३ खेचर जीव पक्षी तोता चटक (चिड़िया) आदि ४ उरपर जीव सर्पादि ५ भुजपर जीव चूहा नेवलादि । सो यह छः काय रूप जीव हैं, सर्व जो इनका सम्पूर्ण वर्ण १ गन्ध २ रस ३ स्पर्श ४ स्वभाव ५ संस्थान ६ आयु ७ उगाहणा ८ आदि कथन देखने हों तो जैन शास्त्र दसवैकालिक जीवाभिगम पन्नवणा जी में विस्तार सहित देख लेना सो ये सब

जीव जन्तु सुखाभिलापि हैं यथा दशवैका-
लिके अध्यन ६ गाथा ११वीं सव्वे जीवावि
इच्छान्ति, जीविउ नमरिज्जिउ, तम्हा पाणवहं
घोरं, निग्गथा वज्जयंतेण, १ अर्थ सर्व जीव
चाहते हैं जीवना नहीं चाहते मरना यनि
मरते हैं मरने से तिस कारण प्राणी वध क-
रना घोर पाप है तिस को सदा त्यागें दया
वान १ तथा अन्य शास्त्रे श्लोक । यथा मम
प्रिया प्राणास्तथा तस्यापि देहिन । इति
मत्वा न कर्तव्यो घोर प्राणिवधो बुधे ॥१॥
अस्यार्थः सुगम इत्यादि ऐसा जानकर वि-
षय भोंग से विरक्त हो कर सर्वथा पटकाय
की हिंसा रूप कार्य ते पांच आश्रव १हिंसा
२ असत्य ३ अदान ४ मैथुन अर्थात स्त्री
सग५ परिग्रह अर्थात् धनसचय, इन पांचों
का संपूर्ण त्यागी होय और १दया २सत्य ३दान

४बंभ ५निस्पृहा इन पांच महाब्रतों को अ-
ङ्गीकार करे और इन पांच महा ब्रतों की सं-
पूर्ण विधि देखनी हो तो सदवैकालिक सूत्र
अध्ययन ४ में देखलेनी और इस विधि पांच
महा ब्रत पालने वाले नर वा नारी को जैन
का साधु वा साध्वी कहते हैं और जो पुरुष
सम्पूर्ण पांच आश्रव का त्यागी न होय या-
नि पांच महाब्रतों का धारी न होय परन्तु
गृहस्थाश्रम में ही रह कर पूर्वक षटकाय हिंसा
रूप कर्म को यथा शक्ति देशब्रत अर्थात् थोड़ा
सा ही मोटे २ आश्रव सेवने का त्याग करे
तिस को बारहब्रती श्रावक कहते हैं सोई
अब बारहब्रतों का स्वरूप सूत्र उपासग दशा
जी तथा आवश्यक के अनुसार लिखते हैं॥

अथ १२ ब्रत अंग साखा अथ प्रथमाऽ
नुब्रत प्रारम्भः । सो प्रथम ब्रत में श्रावक च-

लते फिरते त्रस्य जीव को जान बूझ के मा-
रने की बुद्धि करके न मारे जब तक जीवे
तो फिर ऐसे न करे। घुणा हुआ अन्न भाठ
वा भट्टी में भुनावे नहीं और घुणा अन्न पीसे
पिसावे नहीं और दले दवाले नहीं और सिर
का गेरे नहीं और मक्खी का मुहाल तोडे
नहीं और गोबर सड़ावे नहीं और बिना छाने
पानी पीवे नहीं और आट्टा दाल आदिक
में बिना छाना पानी गेरे नहीं और रस च
लित पदार्थ को वर्ते नहीं अर्थात् जिस खाने
पीने की चीज का अपने वर्ण गन्ध रस,
स्पर्श से प्रतिपक्ष अर्थात् मीठे से खट्टा और
खट्टे से कड़ुआ वर्ण गंध रस स्पर्श हो गया
और जिस आटे में तथा मिष्टान्न पक्वान बूरा
आदिक में लट पड़ जाय तो उसे वरते नहीं

अर्थात् बहुत काल के लिये वस्तु संचय कर के रक्खे नहीं जैसेकि चतुरमासमें आठ तथा पन्द्रह दिन के उपरान्त काल तक संचय करे नहीं और ग्रीष्म काल (गर्मी) में १५ दिन व एक महीने से उपरांत संचय करे नहीं और शीत काल में १ महीने तथा डेढ़ महीने से उपरांत संचय करे नहीं और चैत के महीने से लेकर आश्विन (असौज) के महीने तक रोटी, दाल आदिक ढीली वस्तु रात बासी रख के खाय नहीं ऐसे पहले अनुव्रत के पांच अतिचार कहे हैं ॥१॥ प्रथम नौकर को तथा पशु घोड़ा बैल आदिक को तथा पक्षी काग सूआदिक को रीस करीने पिंजरे में तथा रस्सी आदिक से बांधे नहीं ॥२॥ दूसरे नौकर आदिक को तथा पशु बैल घोड़ा आ-

दिक को क्रोध करीने-गाढा घाव मारे नहीं ॥३॥ कुत्ते के तथा बैल आदिक के अङ्ग (अवयव) कान पूछ आदि छेदन करे नहीं ॥४॥ ऊंट घोडे बैल गधे तथा गाडी आदि पे सामर्थ के प्रमाण के उपरात भार धरे नहीं ॥५॥ नौकर के तथा पशु गाय घोडे आदिक के (घास) खाने के समय अन्तर दे नहीं अर्थात् भूखे रक्खे नहीं इति प्रथमाऽनुव्रतम् ॥

अथ द्वितीयाऽनुव्रत प्रारम्भ ॥

दूसरे अनुव्रत में विना मर्यादा मोटा झूठ बोले नहीं यथा सूत्र कन्नाली गोआली भूआली ॥ "थापण मोसा कूड़ी साख" इत्यादि । झूठ बोले नहीं जब तक जीवे तो फिर ऐसे कभी न करे १ किसी को झूठा कलंक अर्थात् तोहमत लगावे नहीं ॥२॥ किसी के

छिपे हुए अपराध को प्रकट करे नहीं क्यों कि कोई चाहे कैसा ही हो न जाने अपनी बुराई सुन कर कुछ अपघात आदि अकार्य कर ले इत्यर्थम् ॥३॥ झूठा उपदेश करे नहीं जैसेकि मैंने तो झूठ बोलना नहीं तुम ने अमुक कार्य में अमुक झूठ बोल देना ऐसे कहे नहीं ॥४॥ स्त्री का मर्म अर्थात् अनाचार बिलकुल प्रकट करे नहीं क्योंकि स्त्री चञ्चल स्वभाव होती है, सो पहिले तो बुराई कर लेती है और पीछे बुराई को सुनकर जलद ही कुए में कूद पड़ती है इत्यर्थः स्त्री का मर्म प्रकाशित न करे अथवा किसी की भी चुगली करे नहीं ॥५॥ झूठी वही चिट्ठी लिखे नहीं इति द्वितीयानुव्रतम् ॥

॥अथ तृतीयाऽनुव्रत प्रारम्भ ॥

तीसरे अनुव्रत में ताला तोडना ॥१॥ धरी वस्तु उठा लेनी ॥ २ ॥ कुंचल लगानी ॥ ३ ॥ राहगीर लूट लेने ॥ ४ ॥ पड़ी वस्तु धनी की जान के धरनी ॥ ५ ॥ इत्यादि मोटी चोरी करे नहीं जब तक जीवे तो फिर ऐसा अकार्य कभी न करै ॥

१ कोई चीज चोर की चुराई जानकर फिर सस्ती समझ कर लोभ के वश होकर लेवे नहीं ॥२॥ चोर को सहारा देवे नहीं जैसेकि जावो तुम चोरी कर लावो मैं लेलूंगा और तेरे पै कोई कष्ट पडेगा तो मैं सहारा दूंगा ॥३॥ राजा की जगात मारै नहीं॥४॥ कम तोल कम माप करे नहीं ॥ ५ ॥ नयी वस्तु की बानगी दिखा के फिर उस में पुरा-

नी वस्तु मिला के देवे नहीं इति तृतीयाऽनुव्रतम् ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थाऽनुव्रत प्रारम्भः ॥

चौथे अनुव्रत में स्वपरिणीत स्त्री पै संतोष करे पर स्त्री से काम सेवन का त्याग करे यावज्जीव तक फिर कभी ऐसा न करे ॥ १ ॥ अपनी मांगी हुई स्त्री जैसे कि उसी शहर में सगाई हो रही होय तो उस मांगी हुई स्त्री से काम सेवे नहीं क्योंकि वह व्याही नहीं ॥ २ ॥ अपनी व्याही हुई स्त्री छोटी उमर की हो तो उस से काम सेवे नहीं क्योंकि उसे काम की रुचि नहीं हुई है ॥ ३ ॥ पर स्त्री कुमारी व व्याही अथवा विधवा तथा वेश्या हो तिस के सङ्ग कुच मर्दन आदि काम क्रीडा करे नहीं और शीलवान् पुरुष माता तथा भगिनी आदिक के

पलङ्गादि एक आसन में बैठे नहीं और छ
वर्ष के उपरन्त की बेटी हो तो उसे अपनी
शय्या में निद्रागत करे नहीं अर्थात् सुलावे
नहीं और ऐसे ही स्त्री को चाहिये कि अ
पने पति के सिवाय और कोई बहनोई तथा
ननदोई तथा कोई और प्राहुणा तथा नौकर
वा पड़ोसी हो तिस के सामने कटाक्ष नेत्रसे
देखे नहीं तथा दत पक्ति प्रकटाय के हंसे
नहीं और विना कार्य्य बोले नहीं और पू-
र्वक मनुष्यों के साथ अकेली रस्ते में बाट
चले नहीं तथा एकान्त स्थान में अकेली
रहे नहीं । और विधवा स्त्री को तो विशेष
ही पूर्वक कार्य्य वर्जित हैं और विधवा स्त्री
को शृंगार न करना चाहिये क्योंकि (कार्यो
न पेक्षत्वेकारणमेव निष्फल मिति) अर्थात्

जिस कार्य को न करना हो उसका कारण निफल है यानि जब मैथुन त्यागा गया तो फिर शृंगार करने की क्या जरूरत है और आठ वर्ष के उपरान्त पुत्रादिक को अपने साथ पलंग पर सुआवे नहीं और पिता भ्राता स्वसुर जेठ देवर आदिक के बराबर एक आसन बैठे नहीं क्योंकि अग्नि घृत के दृष्टांत अकार्य मैथुन बुद्धि प्रकट होने का कारण है फिर विषय बुद्धि को मोडना ज्ञान विना मुशकिल है और मैथुन के प्रसङ्ग से लोक विहार में अपयश होता है और गर्भादि कारण होने से अपघात बालघातादि दूषण होता है और दूषण के प्रभाव से परलोक में नर्क प्राप्त हो कर (अग्नि प्रज्वालन) तत्ते थम्भ बन्धन मारन ताडन जम पराभवरूप दुःखों का भागी

होता है तस्मात् कारणात् काम क्रीडा हास विलास आदि करे नहीं ॥ ४ ॥ चौथे पराये नाते रिश्ते सगाई व्याह जोडे नहीं (करावे नहीं) अपितु किं प्रयोजनं बम्बूल वृक्ष लगाने वत् ॥५॥ काम भोग तीव्र अभिलाषा करे नहीं क्योंकि कामाध्यवसाय में सुमति विनष्ट हो जाती है इत्यर्थ ॥ इति ॥

॥ अथ पञ्चमाऽनुव्रत प्रारम्भ ॥

पञ्चम अनुव्रत में तृष्णा का प्रमाण करे सो परिग्रह अर्थात् सोना चादी और रत्नादिक तथा मकानात खेत माल गाय भैंस और घोडा आदिक की मर्यादा करे जैसे कि मैं इतना पदार्थ रक्खूंगा और इतने उपरान्त नहीं रक्खूगा और फिर भी ऐसे न करे पूर्वक मर्यादा उलङ्घे जैसे कि मैंने ५००० हजार रुप-

या रक्खा था और अब ज्यादा रुपया हो गया तो अब मकानादि बनवा लूंगा अपितु ज्यादा हो जाय तो अन्नय दानादि धर्मोपकार में लगा दे इत्यर्थः ॥ इति पञ्चाऽनुव्रतानि ॥ ५ ॥ अथ ७ सात शिक्षा ब्रत लिखते हैं, सो इन ७ शिक्षा ब्रतों में से प्रथम तीन शिक्षा ब्रतों को गुण ब्रत कहते हैं (कस्मात् कारणात) कि इन तीन गुण ब्रतों के अङ्गीकार करने से पूर्वक पांच अनुब्रतों को सम्बर रूप गुण की पुष्टि होत भई है इत्यर्थः॥

॥ अथ प्रथम गुण ब्रत प्रारम्भः ॥

प्रथम गुण ब्रत में दिशा की मर्यादा करे जैसे कि ऊंची दिशा पर्वत महल ध्वजादिक और नीची दिशा कुआं आदिक और तिर्छी दिशा पूर्व१ दक्षिण२ पश्चिम३ उत्तर४

इत्यादिक दिशाओं की मर्यादा करे जैसे कि मैं इतने कोस उपरान्त स्वेच्छा कायाकरी आरम्भ व्यापारादि के निमित्त जाऊंगा नहीं क्योंकि उतने कोस उपरान्त वाहरले क्षेत्र के छः काय के हिंसा रूप वैर की निवृत्ति रहेगी इत्यर्थम् । फिर ऐसे न करे कि पूर्वक जो ऊंची १ नीची २ तिर्छी ३ दिशा का जितना प्रमाण करा हो उसे विसरा देवे क्योंकि जो विसारेगा तो शायद ज्यादा जाना पड जाय और ४ चौथे ऐसे न करे कि मैंने पूर्व की दिशा को ५० योजन जाना रक्खा है और पश्चिम को भी ५० योजन जाना रक्खा है सो पश्चिम को जाने का तो काम कम पडता है और पूर्व को वहुत दूर तक जाना पडता है तो पश्चिम को २५ योजन जाऊंगा

और पूर्व के ७५ योजन चला जाऊंगा (ऐसे करे नहीं) ५ पांचवें ऐसे भ्रम पड़ गया हो कि मैंने न जाने पश्चिम को ५०योजन रक्खा था और पूर्व को १०० योजन रक्खा था न जाने पश्चिम को १०० योजन रक्खा था तो फिर पूर्व को और पश्चिम को ५० योजन उपरान्त जाय नहीं। इति १प्रथम गुणव्रतम्॥

॥ अथ द्वितीय गुण व्रत प्रारम्भः ॥

द्वितीय गुण व्रत में उपभोग्य परिभोग्य पदार्थ का यथा शक्तिप्रमाण करे अर्थात उपभोग्यपदार्थ उसको कहते हैं, कि जो पदार्थ एक वार भोगा जाय जैसे कि दाल भात रोटी पक्वान्न आदि और परिभोग्य पदार्थ उसको कहते हैं कि जो पदार्थ वार२ भोगा जाय जैसे कि फूल कपड़ा स्त्री मकानआदि

सो ऐसे पदार्थों की मर्यादा कर लेवे क्योंकि ससार में अनेक पदार्थ हैं और सर्व पदार्थ पाच प्रकार के आरम्भ से सभी के वास्ते बनते हैं सो मर्यादा करे बिना सब पदार्थों की पैदायश का आरम्भ रूप पाप हिस्से ब-मुजिब आता है क्योंकि इच्छा के प्रमाण करे बिना न जाने कौन सा शुभाशुभ पदार्थ भोगने में आजाय तस्मात् कारणात् ऐसे म-र्यादा कर लेवे कि जैसे २४ चौबीस जाति का धान्य अर्थात् अन्न है तिस की मर्यादा करे कि इतने जाति के अन्न नहीं खाऊंगा जैसे कि मह्वआ चोलाई कगनी स्वाक इत्यादि धान्य का बिलकुल त्याग करे और फलों की मर्यादा करे परन्तु जो जमीन में फल उत्पन्न होता है जैसे कि लस्सन गाजर मूली इत्यादि

लाखों किसम हैं और जो त्रस्य जीव अर्थात चलते फिरते जीव सहित फल, फूल, साग, हो जैसे कि गूलर फल, पीपल फल, बटफल आदि और फूल कचनार, फूल सिंबल, फूल गोभी आदि और साग नूंणी, साग चना, इत्यादि तो बिलकुल ही त्यागने चाहियें और अज्ञात फल भी न खाना चाहिये और ऐसे ही ९ नौ प्रकार की विषय सूत्र समाचारी में कही हैं दुग्ध १ दही २ मक्खन नोंणीं ३ घृत ४ तेल ५ मीठा (गुड़आदि) ६ मधु (शहद) ७ मद्य (मदिरा) ८ मांस ९ इति सो इनकी मर्यादा करे परन्तु मद्य १ मांस २ ये दो विषय, सब आर्य पुरुषों ने अभक्ष कहीं हैं सो इन को तो बिलकुल ही त्यागे और ऐसे ही चर्म, छाल, सण, ऊंन, रेशम और कपास

के वस्त्र इनकी मर्यादा करे परन्तु चर्म के वस्त्र तो विलकुल त्याग दे, और रात्रि भोजन का भी त्याग करे क्योंकि रात्रि को भोजन करने में लौकिक जूम, लीख, मच्छर मकडी आदि पडने से रोगादि हो जाते हैं यथा श्लोक–मेधां पिपीलिका हन्ति, यूकाकुर्याज्जलोदरम् । कुरुते मक्षिकावान्ति कुष्ठरोगच कौलिका ॥ १ ॥ इत्यादि ॥

और सभी मतों में रात्रि भोजन का निषेध है यथा महाभारत पुरान में श्लोक–मद्य मांस मधु त्याग सहोदुंबरपञ्चक। निशाहार न गृह्णीया पचर्म ब्रह्म लक्षणम् ॥१॥ इति० और परलोक में अधर्म (हिंसादि) होने से दुर्गतादि विरुद्ध होता है और इत्यादि शास्त्रों द्वारा घना विस्तार जान लेना ।

और चौदह नेम भी इसी व्रत में गर्भित हैं। सो फिर कभी रोग्य परिभोग्य की मर्यादा वान् पुरुष ऐसे न करे कि १ मर्यादा उपरांत सुचित वस्तु फलादिक शून्य चित्त अर्थात् गाफल होकर खावे नहीं और २सुचित वस्तु को स्पर्श कर मर्यादा उपरांत की अचित वस्तु भी खाय नहीं जैसे वृक्ष से गूंद तोड़ के खाय तो गूंद अचित है और वृक्ष सुचित है इत्यादि। और ॥३॥ अधपक्का खाय नहीं और ॥४॥ कुरीत पकाया (जैसे होलें भुर्था आदिक) खाय नहीं और ॥५॥ भूख की अनिवारक जिस औषधि अर्थात् जिस फल से भूख न मिटे उसे खाय नहीं जैसे जिस फल का थोड़ा खाना और बहुत गेरने का स्वभाव है (यथा ईख, सीता फल, अनार,

सिंघाडा, जामन, जमोया, कैत, बिल, इ त्यादि) खाय नहीं ॥ अथ दूसरे गुण व्रत में अशुद्ध कर्तव्य का भी त्याग करे जैसे कि १५ पद्रह कर्मा दान हैं ॥

अथ पन्द्रह कर्मादान का नाम मात्र स्वरूप लिखते हैं कर्मादान उसको कहते हैं कि जिस कर्तव्य के करने से महा पाप कर्म की आमदनी होय इत्यर्थ ॥ १ ॥ प्रथम इगाल कर्म सो कोयले करके बेचने और काच भट्ठी पजावे लगवाने और भाट झोकना इत्यादि कर्म करे नहीं और ॥ २ ॥ दूसरे वन कर्म सो वन कटावे नहीं वन कटाने का ठेका लेवे नहीं ॥३॥ साडी कर्म । सो गाडी बहल पहिये बेड़ा हल चर्खा कोल्हू चूहा घीस पकडने का पिंजरा इत्यादि बनवा के बेचे

नहीं ॥ ४ ॥ चौथा भाड़ी कर्म । सो ऊंट बैल घोड़ा गधा गाड़ी रथ किरांची इन का भाड़ा खावे नहीं ॥ ५ ॥ पांचवा फोड़ी कर्म सो लोहे की खान वा नूंन आदिक की खान खुदावे फुड़ावे नहीं तथा पत्थर की खान फुड़ावे खुदावे नहीं । ये पांच ५ कुकर्म कहे हैं अब ५ पांच कुवाणिज्य कहते हैं ॥१॥ प्रथम दांत कुवाणिज्य । सो हाथी के दांत, उल्लू के नख, गाय का चमर, मृग के सींग, चमडा, जत्त, इत्यादिक का वाणिज्य करे नहीं ॥ २ ॥ दूसरा लाख कुवाणिज्य । सो लाख नील, सज्जी, शोरा, सुहागा, मनाशिल इत्यादिक का वाणिज्य करे नहीं ॥ ३ ॥ तीसरा रस कुवाणिज्य सो मदिरा. मांस, चरबी, घी, गुड, राला, मधु, (शहद) खांड, इत्यादिक

ढीली वस्तु का वाणिज्य करे नहीं ॥ ४ ॥ चौथा केश कुवाणिज्य । सो द्विपद लड़का लड़की, खरीद कर उन्हें पाल २ कर नफा लेकर बेचने, चौपद गाय, भैंस, बैल घोड़ा प्रमुख, बेचने के निमित्त खरीदने फिर पाल२ कर नफा ले कर बेचने, तथा पछी तोता, मैना, तीतर, बटेरा, मुर्गे, प्रमुख खरीद के पाल कर बेचने इत्यादिक वाणिज्य करे नहीं ॥ ५ ॥ पांचवा विष कुवाणिज्य । सो संखिया, सोमल, बच्छ, नाग, अफीम, हरताल, चरस, गांजा, प्रमुख, तथा शस्त्र इत्यादि का वाणिज्य करे नहीं ये पांच कुवाणिज्य कहे हैं॥

अब ५ पाच सामान्य कर्म कहते हैं। १ प्रथम, यन्त्र पीडन कर्म 1 सो सरसों, तिल, इक्षु आदिक पीडावे नहीं ॥ २ ॥ दूसरा नि-

लांछन कर्म । सो बैल, घोडा, खस्सी कराना तथा ऊंट, बैल को दाग देना तथा कुत्ता आदिक के कान, पूंछ काटने तथा चौर आदिक को बैंत लगाने और फांसी आदि देने का हुकम चढ़ाना पडे ऐसी नौकरी सो इत्यादिक कर्म करे नहीं ॥ ३ ॥ तीसरा दवाग्नि दान कर्म । सो बन में आग लगानी तथा खेत की बाड़ फूंकनी इत्यादि करे नहीं ॥४॥ चौथा शोषण कर्म । सो कूआ, तलाव आदिक का पानी सुकावे खेत में देने को तथा नया पानी पैदा करने को इत्यादि करे नहीं ॥ ५ ॥ पांचवा असाति जन पोषण कर्म । सो शौक के निमित्त तीतर, बटेर, कबूतर, कुत्ता, बिल्ली, प्रमुख, पालने पोषणे तथा और दुष्ट शिकारी जन का पोषण इत्यादि कर्म

से वाणिज्य, कसाई से वाणिज्य तथा जो पुरुष मोटे पाप करके द्रव्य कमावे तिस के साथ लेन देन करके खोटी कमाई के द्रव्य का भोगी होवे सो पुरुष । ३ । तीसरा पचेन्द्रिय जीव । जो मनुष्य की तरह गर्भ से पैदा हुआ और खाना, पीना, सोना, विपय भोग (स्त्रीसेवन) करना, और सात धातु करके देह धारक, ऐसे पचेन्द्रिय जीव का जान के घात अर्थात् शिकार करने वाला ।४। चौथा मद्य, मांस, अर्थात् पूर्वक पचेन्द्रिय जीव की धातु के भक्षणे वाला । सो इन ४ लक्षणों का धर्ता मनुष्य नर्क गति में जाता है । वह नर्क गति यह है यथा पाताल में अर्थात् १००० हजार योजन का प्रथम काह पृथ्वी मण्डल का तिस के नीचे बहुत दूर जाकर

असुर पुरी आती है कि जहां भुवनपति देवों का निवास है और जिसको कितनेक मतावलम्बी यमपुरी तथा बलिसद्म कहते हैं और उसके नीचे और अशुद्ध पृथ्वी है वहां १० दस प्रकार की तो क्षेत्र वेदना है यथा (१) प्रथम वहां के पैदा होने वाले जीव को अनन्त ही भूख रहती है परन्तु खाने को एक दाना भी नहीं मिलता तस्मात् कारणात् अनन्त क्षुधा वेदना सहते हैं और जो खाय तो अशुद्ध वस्तु (रुधिर आदि) विक्रय गत ग्रहण करते हैं (२) द्वितीय ऐसे ही अनन्त ही प्यास वेदना (३) तृतीय अनन्त ही शीत वेदना। यथा लौकिक बर्फ से अनन्त गुण अधिक शीत वेदना (४) चतुर्थ अनन्त ही गर्मी यथा इस लोक में कोई एक हाथी

पितादि से रहित दुःख भोगते हैं क्योंकि नर्क में गर्मादि विहार नहीं है नर्क में तो पाप के करने वाला पुरुष काल करके कुम्भी में तथा क्षेत्र वास में स्वत ही कर्मोऽधनि अशुद्ध परमाणुओं में कीड़ों की तरह मनुष्याकार पारावत देह धारी पैदा होता है और दूसरे असुर वेदना नर्क में प्राणी सहते हैं जैसे कसूरकार को हुकमकार ताडता है ऐसे असुर यानि यमराज वा बली राज के हुकम से नार्कियों को उनके कर्मानुसार नाना प्रकार की पीडा देते हैं। यथा जिन्होंने इस लोक में वन काटने का कर्म किया है उनको वहा वैसे बडे २ तीक्षण आरे से चीरते हैं परन्तु वह कर्म योग से मरते नहीं ॥१॥ और जिन्होंने गाडी आदिक का भाड़ा

खाया है उन को लोहे के गर्म रथ में जोत के बज्र के बालु (रेत) गर्म में चलाते हैं ॥ २ ॥ और जिन्हों ने कोहलू पीड़ने के कर्म करे हैं उनको तिल सरसों की तरह कोहलू में पीड़ते हैं अनार्य मच्छादि मार के १ जन्म के पाप और आर्य कई जन्म के पापों से नर्क में पड़ते हैं ॥ ३ ॥ यथा जिन्होंने बैङण आदि के भुर्थे करे हैं तथा चने आदिक की होलें करी हैं तथा सिंघाडे शकरकंदी आदिक को भाठ में दाबते हैं उन को बज्र के रेत को गर्म लाल केसू के फूल की तरह करके उसमें दाब २ के पीडा देते हैं ॥ ४ ॥ और जिन्होंने करेले मूली और जामन को नूण लगा २ धूप लगाई है तथा कंद (गाजर आदि) की कांजी याने अचार

गेरे हैं उनको सज्जी आदिक का भट्ठा क्षार वत् क्षार के विक्रय से कुण्ड भर के उस में उन के तनु में पच्छ लगा के गेर देते हैं ॥ ५ ॥ और जिन्होंने जोहड़ तलाब में व रुके हुए पानी में कूद २ कर स्नान किये हैं (क्योंकि उस में कृम आदि काई आदि में असख अनन्त जीव होते हैं वह देह के खार लगते ही दग्ध हो जाते हैं) सो उन को वैतरणी नदी में डुबो २ कर पीड़ा देते हैं ॥ ६ ॥ और जिन्होंने मदिरा, गाजा, पोस्त, भांग वा तमाकू का विष्ण अंगीकार किया है उनको रांग, तांवा, तरुआ, सीसा, गाल कर पिलाते हैं ॥ ७ ॥ और जिन्होंने जूंम, लीख, मांगणु भिड़, बिच्छू आदि जन्तुओं को नख करके पैर करके वा अग्नि करके

मारा है उनको राध, लोहु संयुक्त कीड़ों के कुण्ड में गेर देते हैं ॥ ८ ॥ और जिन्हों ने मांस भक्षण किया है, उनको उन्हीं का अंग तोड़ २ कर अग्नि में शूलाओं द्वारा पका कर खिलाते हैं ॥ ९ ॥ और जिन्हों ने कामाधीन होकर बेसबरी से पर स्त्री गमन वा पर पुरुष से गमन किया है उन को गर्म किये हुए लोहे के पुतली वा पुतलों से चिपटा देते हैं ॥ १० ॥ और ऐसी २ अनेक बेदनायें नर्क में होती हैं । द्वितीय तिरश्चीन (तिर्यंच) गति में जाने के ४ चार लक्षण कहे हैं । सो प्रथम माया लिये अर्थात् दगा बाजी करने वाले ॥२॥ द्वितीय बहुमाया लिये अर्थात् भेष धार के साधु कहा के कनक (धन) कामनी (स्त्री) का संग्रह करने वाले

तथा माता पिता का और गुरु का तथा शाहका उपकार भूल के अवर्ण वाद बोलने वाले तथा मित्रद्रोही यानि विश्वास दे के घात करने वाले । ३ तृतीय अलिअवयणे अर्थात् बातें२ में झूठ बोलने वाले तथा झूठी गवाही देनेवाले।४। चतुर्थकूड़तुले कूडमाणे अर्थात् कम तोलने,कम मापने वाले ये चार लक्षणों वाले नर तिरश्चीन (तिर्यंच) गति में जाते हैं । सो तिरश्चीन गति कैसी है कि जो मृत्यु लोक में पशु जीव वनचारी तथा गृहों में मनुष्यों ने रक्खे हुए ते गृहचारी पशु ऊंट, बैल, घोडा, गधा, गाय, भैंस, बकरी इत्यादि ते लज्जा रहित, सूग रहित, वस्त्र रहित, जिनका सुख दु ख ताप सीत भूख प्यास परवश हे क्योंकि अपना दु ख सुख किसी को बता नहीं सक्ते हैं कि हम को जाडा लगे है हमें भीतर

बांध दो तथा धूप लगे है छाया में कर दो तथा हमें भूख प्यास लगी है सो हमें खाने पीने को दे दो इत्यादि और नाक छिदाते हैं सींग बंधाते हैं और पीठ लदाते हैं और अपनी हिम्मत से ज्यादा भार वहते हैं और हिम्मत से ज्यादा बाट चलते हैं परन्तु यह नहीं कह सकते कि हम से इतना भार नहीं उठता तथा इतनी दूर नहीं चला जाता, मतलब स्वेच्छा नहीं विचर सकते पराधीन रहते हैं इति। और ३ तीसरे मनुष्य गति में जाने के ४ चार लक्षण कहे हैं। सो १ प्रथम पग भद्दियाए अर्थात् सरल स्वभावी होय और २ दूसरे पगाविणयाए अर्थात् विनयवान् यथा माता पिता के और गुरु के और शाह के तथा और अपने से बड़े पुरुष के साथ मीठा

वोलने का और उन की आज्ञा में चलने का स्वभाव होय । और तीसरे साणुकोसियाए अर्थात् करुणावान् होय यथा दु खी जीव को देख के घट में मुर्झावे और जो दु ख मिटने लायक होय तो तन धन बल के जोर से मेट देने का स्वभाव होय । ४ और चौथे अमच्छरियाए अर्थात् धन का रूप का बल का परवार का मान करे नहीं तथा शुद्ध प्रणाम से दान देवे और दान देके मान करे नहीं । ये ४ चार लक्षण मनुष्य गति में जाने के हैं वह मनुष्य गति कैसी है कि जो मृत्यु लोक अढ़ाई द्वीप प्रमाण है यथा पृथवी के मध्य में १ जबू नाम द्वीप है सो गोल चद्र संस्थान है और लाख योजन की लम्बाई चौडाई है और गिर्दनमाई तिगुणी से

कुछ अधिक है और तिस के विषे ७ क्षेत्र और ६ पर्वत हैं। सो ४ क्षेत्रों में तो निखालस अकर्म भूम मृत्यु अर्थात् मनुष्य हैं और १ क्षेत्र में अकर्म भूम और कर्म भूम मनुष्य शामिल हैं और २ क्षैत्रों में निखालस कर्म भूम मनुष्य हैं सो तिस में से एक क्षेत्र को भारत खण्ड कहते हैं सो भारतखण्ड जंबू द्वीप का १९० वां टुकड़ा है और तिस भारतखण्ड में नदियें और पर्वतों के प्रभाव से छः टुकड़े अर्थात् छः खण्ड हैं सो ३ खण्ड का राज वासुदेव करता है। और ६ खण्ड का राज चक्रवर्ती राजा करता है और इन की छुटाई बड़ाई लंबाई चौड़ाई उंचाई और निचाई जैन के शास्त्र (जीवाभिगम और जंबू द्वीप पन्नाति आदिक) में देख लेनी।

और इस जम्बू द्वीप के गिर्दनमाय लवण समुद्र दो लाख योजन की चौडाई से चारों तर्फ घूम रहा है और तिस के गिर्दनमाय दूना धात् खण्ड नाम द्वीप है और तिस की गिर्दनमाय कालोदाधि समुद्र द्विगुणी चौडाई से घूम रहा है। और तिस के गिर्दनमाय द्विगुणी चौडाई से पुष्कर द्वीप है तिस के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है सो मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्यों की उत्पत्ति है ॥ वे मनुष्य माता पिता के गर्भ से पैदा होते हैं और बाल्यावस्था में विद्या पढते हैं और असि नाम तलवार का और मसी नाम स्याही से लिखने का और कसि नाम कृसाण का कर्म सीखते हैं और करने के वक्त में करते हैं और तरुणावस्था में अच्छा खाना पीना

शृंगार भूषण वस्त्र पहन कर भोग संयोग का स्वभाव पूर्ण करते हैं और माता पिता और गुरु की सेवा करते हैं और दान देते हैं और परमेश्वर के पद को पहचानते हैं अनेक शुभाशुभ कर्म करते हैं ॥ और (४) चौथे चार लक्षण देव गति में जाने के कहे हैं । सो १ प्रथम सराग संयमी अर्थात् साधु वृत्ति संतोष शील के पालने वाले और कनक कामिनी बन्धन रूप गृहाश्रम को त्याग के अप्रतिबन्ध बिहारी परोपकार के निमित्त देशाटन करने वाले ॥ २ दूसरे संयमासंयमी अर्थात् गृहाश्रम धारी । यथा विधि गृह धर्म पूर्वक पाच अनुव्रतादि के समाचरण वाले ॥ ३ तीसरे बाल तपस्वी अर्थात् अज्ञान कष्ट जैसे स्वआत्म परआत्म चीन्हें बिना पञ्चाग्नि

हुआ होगा सो जो तुम कहो तो मैं उन से
ऐसे कह आऊ कि मैं तो जप तप के प्रभाव
से देवता हुआ हूं सो तुम लोगों को भी
धर्म में कायम रहना चाहिये, तो फिर वे दे-
वते कहते हैं कि तुमको तुमारे परिवारी जन
स्वर्ग का स्वरूप पूछेंगे तो तुम विना स्वर्ग
की रचना देखे क्या बताओगे सो तुम चलो
स्नान मज्जन करो और स्वर्ग के रत्नमय स्थान
और बाग आदि और अपसराओं के नाटक
आदि देखो फिर वह देव वैसे ही करता है
और पूर्व प्रीति तो टूट जाती है और और
देव देवियों की नयी प्रीति हो जाती है और
एक नाटक की रचना को दो हजार वर्ष लग
जाते हैं इस करके देवता मृत्यु लोक में विना
कारण नहीं आ सक्ता है और देवता स्वेच्छ

चारी विक्रय शक्ति करके नाना प्रकार के रूप बना कर नाना प्रकार के पुष्प फल सुगन्ध आदि सुखों के भोगी होते हैं और इन का सम्पूर्ण आयु आदि स्वरूप देखना हो तो जैन के शास्त्रों में बखूबी देख लेना । सो ये ४ चार गति रूप संसार का स्वरूप केवल ज्ञानी ऋषभ देव से ले कर महावीर स्वामी पर्यंत अवतारों ने केवल दृष्टि करके करामलकवत् देखा है और परोपकार निमित्त शास्त्र द्वारा भाषण किया है ॥ और मैंने तो यहां किञ्चित नाम मात्र ही भाव लिखा है और अब, २ दूसरे, जो ४ चार गति में से किसी एक गति में से आकर मनुष्य गति पाता है तिस मनुष्य के ४ चारों गतियों के आश्रय अन्यान्य छः २ लक्षण प्रकरण में कहे हैं ॥

खाते को देख न लेवे तो भला किसी को क्या वह तो उसी को दुखदाई होगी । अथवा किसी ने भीतर बैठ के मिसरी खाई तो फिर किसी को क्या सुनावे है और क्या अहसान करे है । भाई तेरा ही मुख मीठा होगा इति ॥ ऐसे ही शुभाशुभ कर्तव्य का विचार है क्योंकि जो शुभाशुभ कर्म करेंगे वे उन्हीं को सुख दुःख दायक होंगे । क्योंकि किये हुए कर्म न रूप को देख कर रीझते हैं, न धन की रिशवत (वढ़ी) लेते हैं, और न ही बल से डरते हैं इस लिये १ प्रथम कर्म विपाक के कारण को जानना चाहिये यथा समवायाङ्ग में ३० महा मोहनी कर्म कहे हैं उनको करि जीव महा मोहनी कर्मों से बंध जाता है इस लिये प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि जहां तक हो उन से

वचने का उद्योग करे, वे महा मोहनी कर्म ये हैं यथाः—

(१) त्रस्य जीवों को पानी में डुवो २ के मारे तो महा मोहनी कर्म वांधै० ।

(२) त्रस्य जीवों को अग्नि में जाल के धूम्र में घोट के मारे तो म० ।

(३) त्रस्य जीवों को श्वास घोटके मारे तो म०

(४) त्रस्य जीवों को माथे घाव गेर के मारे तो म० ।

(५) त्रस्य जीवों के माथे गीला चाम वांध के धूप में मारे तो महा मोहनी कर्म वान्धे ॥

(६) गुंगे गहले को मार के हंसे तो म०

(७) अनाचार सेव के गोपन करे अर्थात् खोटा कर्म करके फिर छिपावे तो म० ।

(८) अपना अवगुण पराये माथे लगावे तो म०।

(९) राजा की सभा में झूठी साक्षी भरै तो म०।

(१०) राजा की जगात (महसूल) मारे अर्थात राजा के धन आवे को रोके तो म० ।

(११) ब्रह्मचारी नहीं ब्रह्मचारी कहावे तो म० ।

(१२) बाल ब्रह्मचारी नहीं बाल ब्रह्मचारी कहावे तो म० ।

(१३) शाह का धन लूटे शाह की स्त्री भोगे तो महा मोहनी कर्म बांधे ॥

(१४) पंचों का घात चिंतन करे तो म० ।

(१५) चाकर ठाकर को मारे प्रधान, राजा को मारे, स्त्री पुरुष को मारे तो म० ।

(१६) एक देश के राजा की घात चिन्तन करे तो म० ।

(१७) पृथ्वीपति राजाका घात चिन्ते तो म० ।

(१८) साधु का घात चिन्ते तो म० ।

(१९) सत्य धर्म में उद्यम करते को हटा देवे तो म० ।

(२०) चार तीर्थों के अर्थात साधु के १ साध्वी के २ श्रावक के ३ श्राविका के अवगुण वाद बोले तो म० ।

(२१) तीर्थंकर देव के अवगुणवाद बोले तो म०

(२२) आचार्य जी के उपाध्याय के अवगुण वाद बोले तो म०

(२३) तपस्वी नही तपस्वी कहावे तो म० ।

(२४) पण्डित नही पण्डित कहावे तो म० ।

(२५) वियावच्च का भरोसा दे के वियावच्च न करे अर्थात रोगी साधु को गछ से निकाले कि चल तेरी टहल करूंगा और फिर टहल न करे तो म० ।

(२६) गच्छ में छेद भेद पाड़े तो म० ।

(२७) हिंसाकारी अर्थात पापकारी शास्त्र का उपदेश करे तो म० ।

(२८) अनहुए देव मनुष्य के भोगों की वाञ्छा करे तो म० ।

(२९) देवता आवे नहीं कहे मेरे पे देवता आवे है तो म० ।

(३०) जो अलोव न करके निःशल्य होय उस के अवगुण वाद बोले तो म० ॥ इति ॥

कम विपाक प्रकरण में से ३० सामान्य कर्म बंध फल कहते हैं ॥ यथाः—

१ प्रश्न—निधन किस कर्म से हो ?
उत्तर— पराया धन हरने से०

२ प्र० दरिद्री किस कर्म से होय ?
उ० दान देते को वर्जने से०

३ प्र० धन तो पावै परन्तु भोगना नहीं मिले कि०
उ० दान दे के पछतावने से०

४ प्र० अकुली अर्थात् जिस पुरुष से पुत्र पुत्री न होय किस०
उ० जो वृक्ष रस्ते के ऊपर हों जिन से अनेक पशु और मनुष्य फल फूल खावें और छाया करके सुख पावें ऐसे वृक्षों को कटवावे तो०

५ प्र० वन्ध्या किस कर्म से होय ?
उ० गर्भ गलावे तथा गर्भ गलाने की औषधि देवे तथा गर्भवती मृगी का वध करे तो०

६ प्र० मृत वन्ध्या किस कर्म से होय ?
उ० बैंगण आदि का भुर्ता करे तथा होलें करे

तथा कंद मूल खाय तथा मुर्गी आदिक के अण्डे (बच्चे) मार खाय तो०

७ प्र० अधूरे गर्भ गल २ जायें किस कर्म से ?

उ० पत्थर मार २ के वृक्ष के कच्चे पक्के फल फूल पत्ते तोड़े तथा पंछियों के आलने तोड़े तथा मकड़ी के जाले उतारे तो ?

८ प्र० गर्भ में ही मर २ जाय तथा योनिद्वार में आ के मरे किस कर्म से ?

उ० महाऽऽरम्भ जीव हिंसा करे मोटा झूठ बोलें तथा रूपोत्तम साधु को असूझता आहार पानी देवे तो०

९ प्र० अन्धा किस कर्म से होय ?

उ० मक्ष्यालय तोड़ के शहद निकाले भिंड ततइया मच्छर को धूआं देके आग लगा के मारे तथा क्षुद्र जीवों को डुबो के मारे तो०

१० प्र० काणा किस कर्म से होय ?

उ० हरे वनस्पति का चूर्ण करें तथा फल फूल वा बीज बीधे तो०

उ० यथा क्षुधा खा पी के असार (निःसार) भोजन साधु को देवे तो०

२२ प्र० बाल विधवा किस कर्म से०

उ० अपने पति का अपमान कर के परपति के साथ रमे तथा कुशीलिनी हो के सती कहावे तो०

२३ प्र० वेश्या किस कर्म से ?

उ० उत्तम कुल की वहु बेटी विधवा हुए पीछे कुल की लाज से कोई अकर्त्तव्य तो न करने पावे परन्तु सत्संग के अभाव से भोगों की वाञ्छा रक्खे तो०

२४ प्र० जो जो स्त्री ब्याहे सो सो मरे (जिस पुरुष की स्त्री न जीवे) किस कर्म से ?

उ० साधु कहा के स्त्री सेवे तथा त्यागी हुई वस्तु को फिर भोगे तथा खेत में चरती हुई गौ को त्रासे०

२५ प्र० नपुंसक किस कर्म से ?

उ० अति कूट (महा छल) कपट करे तो०

२६ प्र० नर्क गति में जाय किस कर्म से ?

उ० सात कुव्यसन सेवे तो०

२७ प्र० धनाढ्य किस कर्म से ?

उ० सुपात्र को दान दे के आनन्द पावै तो०

२८ प्र० मनोवाञ्छित भोग मिले किस ० ?

उ० परोपकार करे तथा वडों की टहल करे तो०

२९ प्र० रूपवान किस कर्म से ० ?

उ० तपस्या करे तो०

३० प्र० स्वर्ग में जाय किस कर्म से ?

उ० क्षमा, दया, तप, संयम, करे तो० इति

अथाष्टम व्रतम्

॥ तथा तृतीय गुण व्रत प्रारम्भः ॥

तृतीय गुण व्रत में अनर्थ दण्ड अर्थात् नाहक्क कर्म बंध का ठिकाना, तिस का त्याग करे। वह अनर्थ दण्ड ४ चार प्रकार का है सोः—

१ प्रथम अवज्झाण चरियं सो आर्त ध्यान अर्थात् १ मनोगम पदार्थ के न मिलने की

११ प्र० गूंगा किस कर्म से होय ?
उ० देव धर्म की निन्दा करे तथा निर्ग्रंथ गुरु की निन्दा करे तथा गुरु के मुह मथकोड़ के छिद्र देखे०

१२ प्र० बहरा (बोला) किस कर्म से होय ?
उ० पराया भेद लेने को लुक छिप के बात सुनने तथा निन्दा सुनने का स्वभाव होय तो०

१३ प्र० रोगी किस कर्म से होय ?
उ० गूलर (उदुम्बर) आदि फल खाय तथा सूहे घींस पकड़ने के पिंजरे बेचे तो०

१४ प्र० बहुत मोटी स्थूल देह पावे किस०
उ० शाह होके चोरी करे तथा शाह का मन चुरावे तो०

१५ प्र० कोढी किस कर्म से होय ?
उ० वन में आग लगावे तथा सर्प को मारे तो०

१६ प्र० दाह ज्वर किस कर्म से होय ?
उ० ऊठ बैल गधे घोड़े के ऊपर ज्यादा बोझ

लादे तथा शीत वा गर्मी में रक्खे भूखे प्यासे रक्खे तो०

१७ प्र० सिरसाम अर्थात् चित्तभ्रम किस कर्म से ?

उ० ऊंची जाति व गोत्र का मान करे तथा छाना (छान्हा) अनाचार मद्य मांसादि भक्षण करके मुकरे तो०

१८ प्र० पथरी रोग किस कर्म०

उ० कन्या तथा वहन वेटी माता स्थान स्त्री से विषय सेवे तथा वज्र कन्द भून भून खाय तो०

१९ प्र० स्त्री पुरुष और शिष्य कुपात्र वैरी समान किस कर्म से ?

उ० पिछले जन्म मे उन से निष्कारण विरोध किया होय तो०

२० प्र० पुत्र पाला पोसा मर जाय किस कर्म से ?

उ० धरोड़ मारी होय तो०

२१ प्र० पेट मे कोई न कोई रोग चला रहे (होता ही रहे) किस कर्म से ?

उ० बचा खुचा खा पी के असार (निसार) भोजन साधु को देवे तो०

२२ प्र० बाल विधवा किस कर्म से०

उ० अपने पति का अपमान कर के परपति के साथ रमे तथा कुशीलिनी हो के सती कहावे तो०

२३ प्र० वेश्या किस कर्म से ?

उ० उत्तम कुल की बहु बेटी विधवा हुए पीछे कुल की लाज से कोई अकर्त्तव्य तो न करने पावे परन्तु सत्संग के अभाव से भोगों की वाञ्छा रक्खे तो०

२४ प्र० जो जो स्त्री ब्याहे सो सो मरे (जिस पुरुष की स्त्री न जीवे) किस कर्म से ?

उ० साधु कहा के स्त्री सेवे तथा त्यागी हुई वस्तु को फिर ग्रहे तथा खेत में चरती हुई गौ को मारे०

२५ प्र० नपुंसक किस कर्म से ?

उ० अति क्रूर (महा छल) कपट करे तो०

२६ प्र० नर्क गति में जाय किस कर्म से ?
उ० सात कुव्यसन सेवे तो०
२७ प्र० धनाढ्य किस कर्म से ?
उ० सुपात्र को दान दे के आनन्द पावे तो०
२८ प्र० मनोवाञ्छित भोग मिले किस ० ?
उ० परोपकार करे तथा बड़ों की टहल करे तो०
२९ प्र० रूपवान किस कर्म से ० ?
उ० तपस्या करे तो०
३० प्र० स्वर्ग में जाय किस कर्म से ?
उ० क्षमा, दया, तप, संयम, करे तो० इति

अथाष्टम व्रतम्

॥ तथा तृतीय गुण व्रत प्रारम्भः ॥

तृतीय गुण व्रत में अनर्थ दण्ड अर्थात् नाहक्क कर्म बंध का ठिकाना, तिस का त्याग करे। वह अनर्थ दण्ड ४ चार प्रकार का है सोः—

१ प्रथम अवज्झाण चरियं सो आर्त ध्यान अर्थात् १ मनोगम पदार्थ के न मिलने की

चिन्ता । २ अमनोगम पदार्थ मिलने की चिन्ता । ३ भोगों के न मिलने की चिंता । और ४ रोगों के मिलने की चिन्ता का करना ॥ २ ॥ दूसरा रुद्र ध्यान अर्थात् १ प्रथम हिंसानन्द । सो हिंसा रूप कर्म के विचार में ध्यान होना जैसे कि मेरी सौकन तथा सौकन का पूत किस उपाय से मारा जाय और कब मरेगा तथा मेरी स्त्री रोगन है वा कुरूपा कलहारी है सो कब मरेगी और यह बूढा बूढी कब मरेंगे तथा मेरे वैरी का नाश कब होगा और वैरी के शोक (सोग) कब पडेगा तथा वैरी के घर में तथा खेत में आग कब लगेगी इत्यादि ॥ और २ दूसरे मृषानन्द । सो झूठ बोलने के तथा झूठा कलङ्क देने के उपाय विचार रूप ॥ और ३

तीसरे चौर्यानन्द । सो चोरी के छल के विश्वास में देन के प्रसंग ठगी करने के उपाय विचार रूप ॥ और ४ चौथे संरक्षणानन्द । सो धन धान्य के पैदा करने के तथा धन धान्य की रक्षा करने के हिंसाकारी उपाय विचार रूप । अर्थात् चूहे धान आदिक खाते हैं तो बिल्ली रख लें इत्यादि । सो ये आर्त ध्यान और रुद्र ध्यान ध्यावने में अनर्थ अर्थात् नाहक्क कर्म बन्ध हो जाते हैं ताते "निश्चय नय को मुख्य रख के संतोष करना चाहिये यथा होनहार ना मेटे कोय, होनी हो सो होई हो" इति वचनात् ॥

अथ २ दूसरा अनर्थ दण्ड ।

प्रमादाचरण । सो प्रमाद ५ पांच प्रकार का है तिस का आचरण सो प्रमादाऽऽचरण

होता है । सो १ प्रथम निद्रा प्रमाद, सो वे मर्यादा वख्त बे वख्त सो रहना यथा निद्रा ४ प्रकार की है ॥

१ स्वल्प निद्रा । २ सामान्य निद्रा । ३ विशेप निद्रा । ४ महा निद्रा ॥

१ स्वल्प निद्रा । सो ७ पहर जागना और १ पहर सोना तिस को उत्तम पुरुप कहते हैं । और दूसरे सामान्य निद्रा सो ५ पहर जागना और ३ पहर सोना तिस को मध्यम पुरुप कहते हैं । और तीसरे विशेप निद्रा सो ४ पहर जागना और ४ पहर सोना तिस को जघन्य नर अर्थात् नीच नर कहते हैं । और महा निद्रा सो तीन पहर जागना और ५ पहर सोना तिस को अधम नर कहते है, परन्तु रोगादि कारण की वात न्यारी

है और सूत्रों के विषय ५ प्रकार की निद्रा और भाव की कही है। सोई जो धर्म कार्य के निमित्त जागना है सो उत्तम है और जो धर्म कार्य सामाजिकादि के वक्त में सो रहना सो अनर्थ दण्ड है क्योंकि नींद के वश हो के नाहक्क सामाजिक आदि का लाभ खो देना है इति ॥ और २ विकथा प्रमाद सो स्त्री के रूप आदिक की कथा करनी और देशों के खाने पक्वान्न व्यञ्जन आदिक की कथा और देशों के चालचलन आदि चोरों की जारों की राजाओं की कथा और तेरी मेरी बातें करनी नाहक्क गाल मारे जाने बेफायदे और शास्त्र स्तोत्र का स्मरण न करना तथा अवतारों के नाम न लेने इत्यादि ॥ और ३ तीसरे विषय प्रमाद

सो वाग वगीचे नाटक चेटक राग रग देखने को जाना और पराए वर्ण गध रस, स्पर्श देख के हुलसना कि आहा। क्या अच्छा है हमको भी ऐसे ही चाहिये ॥ इत्यादि और फासी आदिक लगते हुए पीडित पुरुष को देखना क्योंकि वहा ऐसे परिणाम होने का कारण है कि कव फासी लगे और कव घर को जायें इत्यादि ॥ और ४ चौथे कषाय प्रमाद। क्रोध में नाहक जलना और मान में न मेवना और माया अर्थात् दगावाजी यानि छल से वात घडनी और लोभ सज्ञा में प्रवर्त्तना जेसे कोई अकल का अन्धा और गाठ का पूरा आजाय इत्यादि और ५ पांचवें आलस्य प्रमाद सो गुरु दर्शन करने का और व्याख्यान सुनने का आलस्य जैसेकि

धूप पड़ती है अब कौन जाय और सामा-
जिक करने का आलस्य कि अब तो गर्मी
पड़ती है तथा शीत पड़ता है ॥ कौन समा-
यक करे और साधु को आहार अर्थात् भिक्षा
देने का आलस्य करे कि अरे अमुक तूही
दे दे मैं तो लेटा पड़ा हूं इत्यादि । तथा घी,
तेल, तथा आचार का वर्तन, गुड़, शहत का
वर्तन भिगोई हुई खल का वर्तन तथा वस्खल
(वट्टल) जो उरले परले यानि जूंठ खूंठ के
पानी का वर्तन, उघाड़ा (नंगा) पड़ा हुआ
होय तो उसको आलस्य करके ढके नहीं सो
आलस्य प्रमाद में नाहक कर्म बन्ध जाते हैं
क्योंकि अनेक जन्तु स्थूल सूक्ष्म पूर्वक भाजनों
में गिर २ के डूब २ के मर जाते हैं इत्यर्थ
इति द्वितीयानर्थ दंडः ॥ २ ॥

३ अथ ३ तीसरा अनर्थ दण्ड पाप कर्मोपदेश । सो अपने मतलब विना हर एक पास पडोसी आदिक को ऐसे कहना कि अरे तेरे वछडे बडे होगये हैं इनको वधिया करा ले तथा तेरी गाय, घोडी स्यानी होगई हैं इनको (गर्भ) गन्भन करा ले तथा तेरी बेटी स्यानी होगई है इसको व्याह दे तथा और आम आमलेआदिक बहुत विकने आये हैं सो तुम बैठे क्या करते हो जाओ ले आओ आचार गेर लो अब तो सस्ते मिलते है तथा और तेरे खेत में झाडियें बहुत होगई हैं तथा बाड पुरानी होगई है सो इसको फूंक दे इत्यादि। इति तृतीयानर्थदंड ।३।

४ चौथाअनर्थ दण्ड, हिन्सा प्रदान । सो १ हल । २ मूसल । ३ चक्की । ४ चर्खा

५ दांती । ६ कुहाड़ा । ७ घीयाकस । ८ कांटा डोल निकालने का । ९ कोहल्ल इत्यादि तथा शस्त्र की जाति तथा टोकना कड़ाहा आसमाना इत्यादि उपकरण अपने वर्तने से ज्यादा रखने, सो विवेकवान रक्खे नहीं क्योंकि ज्यादा रक्खेगा तो हरएक मांगके ले जायगा तो वह लेजाने वाला उस उपकरण से षट् काय हिन्सा रूप आरम्भ करेगा तब उसको आरम्भ का हिस्सा आवने से नाहक्क कर्म बन्ध होंगे इत्यर्थः । ४ ।

इस ४ चार प्रकार के अनर्थ दण्ड का बुद्धिमान् पुरुष त्याग करे यावज्जीव तक तो फिर ऐसे न करे ॥ १ प्रथम कंदर्प्य सो हांसी बिलास ठट्ठा (मश्करी) काम विकार के दिपाने वाले गीत राग रागनी दोहा छन्द

इत्यादि निरर्थक चित्त मलीन करने के और शोक (सोग) पैदा करने के कारण हैं सो न करे और २ दूसरे कुकच सो भड चेष्टा जैसे कि काणे की, अन्धे की, लगडे की, गूंगे की, खाज आदि रोगी की नकल करनी यानि वैसे ही बनके दिखाना फिर हड हड करके हसना और औरों को हसाना अथवा और तिलस्मात् इन्द्रजाल करके कुतूहल करना तथा ख्याल तमाशे साग नाटक का देखना तथा चौपड गजफा गोली कौडी से खेलना इत्यादि निरर्थक काल का और काज का विगोवना है क्योंकि इस में कुछ लाभ का कारण नहीं है तस्मात् कारणात् भंड चेष्टा न करे, और ३ तीसरे मुखारि (सो) नाहक गाली देनी यानि गाली विना वात का

न करना तथा माता पिता और शाह का और विद्या गुरु का और धर्म गुरु का सामना करना कडुआ बोलना और निन्दा करनी तथा देवगुरु धर्म की कस्म-खानी और तूं २ क्या है २ इत्यादि निरर्थक कलह का करना सो न चाहिये ॥ और ४ चौथे संयुक्त अधिकरण (सो) पापकारी उपकरण पूर्वकछाज छाननी, हल, मूसल आदिक बहुत रखने सो रक्खे नहीं । और ५ पांच में उप-भोग्य परिभोग्य अतिरिक्त सो खानेकी पीने की पहरने की वस्तु पै बहुत गिर्द होना अर्थात बहुत मोह करना और अनहुई वस्तु की चाह करनी जैसे कि मेरे पड़ोसी की दुकान हवेली स्त्री आदिक क्या अच्छी है आह मेरे ऐसी २ क्यों न हुई, मुझे भी ऐसी

चाहिये इत्यादि तीव्र अभिलाषा करनी न चाहिये । इति तृतीय गुण व्रतम् ॥

अथ १ प्रथम शिक्षा व्रत प्रारम्भ

प्रथम शिक्षा व्रत में समायक करे सो समायक की विधि द्रव्य भाव रूप लिखते हैं १ प्रथम तो अपने सोते हुए ही सूर्य्य न उगावे अर्थात् सूर्य्य उगने से पहिले दो चार घड़ी पिछली रात लेके प्रभात समय में उठे बाधा (पीग) हटजाय पीछे शुचि वस्त्र धारण करके पोषध साल अर्थात् एकान्त स्थान चौबारा आदिक में फल फूल कच्चा फल आदि वर्जित स्थान का रजोहरण तथा सण की नर्म जड़ी (बुहारी) से पडिलेहणा (प्रमार्जन) करे और जो प्रमार्जन करते २ ईंट रोड़ा आगे आजाय तो उसे गरणये ही न

जाय एकांत उठा के रख देवे और जो कूड़ा कचरा निकले उसे फैला के देखे क्योंकि कीड़ी आदिक जन्तु रेत में दबी न रहजाय और जो कीड़ी आदिक निकले उसे एकांत करके कचरे को वुसरा देवे ॥ फिर ईर्या वही पड़िकम्मे फिर ४ चार प्रकार की समायिक करे सो द्रव्य थकी १ । खेत्र थकी २ । काल थकी ३ । भाव थकी ४ । तेद्रव्य थकी समा- यिक १ तथा २ इत्यादि ॥ खेत्र थकी समायिक लोक प्रमाण ॥ काल थकी समायिक २ घड़ी तथा ४ घड़ी इत्यादि ॥ भावथकी समायिक (सो) शांति प्रमाण और सर्व भूत आत्म तुल्य शत्रु मित्र सम इत्यादि० अथवा ४ चार प्रकार के समायक की शुद्धता सो १ द्रव्यथकी २ खेत्र थकी

२ काल थकी ४ भावथकी ते द्रव्य थकी स-
मायक शुद्ध सो समायक का उपकरण शुद्ध
अर्थात् आसन शुद्ध रक्खे जैसेकि बहुत करडा
तप्पड़ आदिक का न रक्खे क्योंकि कोई
मकड़ी आदिक जीव मसला न जाय
और बहुत नर्म नमदादि का भी न रक्खे
क्योंकि कोई पूर्वोक्त जीव फस के न मर
जाय ॥ सो लोई तथा कम्बल तथा बनात
तथा और सामान्य वस्त्र का आसन रक्खे
और पत्थर आदिक की भारी माला न रक्खे
सूत की तथा काष्ट कीमाला सो भी हलकी
होय तो रक्खे और पूंजनी अन उपूर्वी पोथी
शुद्ध रक्खे १ क्षेत्रथकी समायक शुद्ध सो
पूर्वक एकांत स्थान समायक करे अपिठ
नाटक चेटक के स्थान तथा चूल्हे चक्की के

पास न करे क्योंकि नाटक चेटक रागादि देखने सुनने से शायद श्रुति समायक से निकल जाय और चूल्हे चक्की के पास सुचित का संघट्ट होजाय तथा बाल बच्चे के आर जार से चित भंग होजाय इत्यर्थः २ ॥ और कालथकी समायक शुद्ध सो लघु बड़ी नीति की बाधा का काल न होय तथा राजादिक के बुलावे का यानि कचहरी जाने का काल न होय क्योंकि चित व्याकुल होजायगा कि कब समायक पूरी होय और कब जाऊं इत्यर्थः ॥ ३ ॥ और भाव शुद्ध सो पूर्वोक्त भाव का शुद्ध रखना इति ॥

अथ समायक का पाठ विधि सहित लिखते हैं ॥ प्रथम १ तो देव गुरु को खड़ा होके नमस्कार करे प्रत्यक्ष होय तो प्रत्यक्ष

और जो प्रत्यक्ष न होय तो देव गुरु की तर्फ भाव अर्थात् श्रुति से नमस्कार करे ॥ यथा तिख्खुतो अयाहिणं पयाहीणं करि करिबन्दा मित्ता नमोस्सामी सक्कारेमी समाणेमी कल्लाण मगल देविये चेइयं पज्जवास्सामी मत्थ एण वन्हामी ॥ ९ ॥ इति ॥ अथ बीज मंत्रम् ॥

नमो अरिहंत्ताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरिआणं, नमो उवज्झायाण, नमो लोए सव्व साहूणं, एसो पंचनमकारो, सव्व पाव-प्पाणासणो मगलाण च सव्वेसिं, पढम हवई मंगलं ॥ १ ॥ एहना ९ पद ८ सपदा ६८ अक्षर जिस में ७ अक्षर गुरु और ६१ अक्षर लघु इति ॥

अरिहतो मे देवो जाव जीव सुसाहूणं गुरुणं जिन पनत्त तत्त ए समत्तं मे गहियं ।

पंचिंदि असंवरणो, तह नवं विहवं भचेर गुत्तीधरो, च उविह कसाय मुक्को, इ अ अठा-रस्स गुणेहिं संज्जुत्तो, १ पंचम हव्वय ज्जुत्तो पंचविहायार पालण समत्थो, पंच समिउ त्तिगुत्तो, छत्तीस गुणो गुरुमज्झ २ ॥

अथ समायक अंगीकार करने का प्रथम १ पाठ । इच्छा कारेण संदिसह भगवन् इरिआव हिअं पडिक्कमामि इच्छं इच्छामि पडिक्कमिउं १ इरिआवहिआए विराहणाए गमणा गमणे २ पाणक्कमणे बीअक्कमणे हरि अक्कमणे उसाउत्तिंग पणगदगमट्टी मक्कड़ा संताणा संक्कमणे ४ । जे मे जीवा विराहिआ ५ । एगिंदिआ बेइंदिआ ते इन्दिआ चउ-रिन्दिआ पंचिन्दिआ ६ । अभिहआ वत्तिआ लेसिआ संघाइआ संघट्टिआ परि आविआ

किलामिआ उद्दविआ ठाणा उठाण सकामिआ ज्जीविआउ ववरीविआतस्स मिच्छामि डुकड ७ ॥ २ ॥ तस्य उत्तरी करणेणं पायच्छित्त करणेणं विसोही करणेणं विसली करणेणं पावाणं कम्माण निग्घायणढाए ठामि का उस्सग्ग अन्नत्थ ऊससिएण नीससिएणं खासिएण छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वासय निसग्गेण भमलीए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अग संचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिउं हुज्जमेकाउसग्गो ज्जाव अरिहत्ताणं भगवताण नमोकारेणं नपारेमिताव काय ठाणेणं मोणेणं झाणेण अप्पणं वोसिरामि ३ ॥ यह पाठ कहके ध्यान धारे इम लोगस्सउज्जो अगरे, धम्म तित्थयरेजिणे,

अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसंपि केवली ॥ १ ॥
उसभ मज्जिअंच वन्दे, संभवमभिनन्दणं च ।
सुमिणं च, पउमप्यहं, सुपासं जिणं च चन्द-
प्यहं बन्दे ॥२॥ सुविहिंचपुप्फदन्तं, सीअल
सिज्जंस वासुपुज्जं च, विमलमणन्तं च जिणं,
धम्मंसंतिं च बन्दामि ॥ ३ ॥ कुन्थुं अरं च
मल्लिं, बन्देमुणिसुव्वयं नामिजिणं च, बन्दामि
रिठ्ठनेमि, पासंतह बद्धमाणं च ॥ ४ ॥ एवं
मए अभिथुआ, विहुअर यमलापहीण जर
मरणा, च उवीसं पिजिणवरा, तित्थयरामे पसी-
अंतु ॥ ५ ॥ कित्तिअबन्दिअ महिआ, जेते
लोगस्स उत्तमासिद्धा, आरोग्ग बोहिलाभं,
समाहिवर मुत्तमंदितु ॥ ६ ॥ चन्देसुनिम्म-
लयरा, आइच्चेसुअहिअंपया सगरा सागर वर
गम्भीरा, सिद्धा सिद्धिममदिसंतु । ७ । ४

इस पाठ के पद २८ सपदा २८ दहण्क७ गुरु अक्षर २८ लघु अक्षर २३२ एव सर्व २६०।

सो इस पाठ को ध्याना रूद होके मन में स्मरण करे फिर "नमो अरिहत्ताण" यह शब्द प्रकट कहके ध्यान खोलले और फिर ध्यान खोलके इसी पाठ को प्रकट कहे ॥

और फिर देवगुरु को पूर्वक नमस्कार करके समायक लेने की आज्ञा लेवे और फिर समायक लेने का यह पाठ पढ़े ॥ यथा करेमि भंते समाइय सावज्जजोग पचक्खामी जाव निअभ्र महूरत १ तथा २ पज्जुवासामि दुवि हेति वि हेण नकरेमि नकारवेमि मणसा वायसा कायसा तस्सभंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामी ॥ ५ ॥

इस पाठ से सामाजिक वंत होकर फिर ,

नमोस्तु० पाठ पदे ॥

नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवताण ॥१॥ आइगराणं त्तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं ॥ २ ॥ पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिस वर पुण्डरी-आणं पुरिस वरगन्ध हत्थीणं ॥ ३ ॥ लोगु-त्तमाणं लोग नाहाणं लोग हिआणं लोग पईवाणं लोग पज्जो अगराणं ॥४॥ अभय दयाणं चक्खु दयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं बोहि दयाणं ॥५॥ धम्म दयाणं धम्म देसयाणं धम्म नायागाणं धम्म सारहीणं धम्म वर चाउरन्त चक्कवट्टीणं ॥६॥ दीवो ताणं सरण गइ पइट्ठा अप्पडि़ हय वर नाणं दंसण धराणं विअट्ठ छउमाणं ॥ ७ ॥ जिन्नाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं ॥८॥ सव्वन्नूण सव्व दरिसीणं सिव मयल

मरुअ मणंत मक्खय मव्वा वाह मपुण रावति सिद्धि गइ नाम धेयं ठाण संपत्ताण नमो जिणाण जिअभयाण ॥ ९ ॥ ६ इस पाठ के पद ३० सपदा ९ गुरु अक्षर ३० लघु अक्षर २४४ सर्व अक्षर २७४ ॥

इस पाठ को जीमणा (सज्जा) गोडा निमा के और वामा (खव्वा) गोडा खड़ा करके और दोनों हाथ जोड के वामें गोडे पर धरके पढे और फिर दूसरे इसी पाठ को पढे परन्तु अन्त के दूसरे पद को ठाणं सपा वियो का मिस्स ऐसे कहे क्योंकि प्रथम पाठ में तो सिद्धों को नमस्कार होती है और दूसरे पाठ में अरिहतों को नमस्कार होती है इति॥

इस विधि से समायक के काल की मर्यादा तक समायक वन्त होके विचरे और

जो प्रति क्रमणा अर्थात् पडिक्कमणा आता होय तो पडिक्कमणा करे ॥ और देवगुरु धर्म की स्तुति रूप पाठ करे और धर्म चर्चा करे परन्तु समायक में निन्दा विकथा संसारी कार विहार नाते रिश्ते का ज़िकर न करे ॥ फिर समायिक की मर्यादा पूर्ण हुए थके समायक पारणे में प्रथम इच्छा कारण का पाठ और तसोत्तरी का पाठ पढ़के लोगस्स उज्जोयगरे का पूर्वक ध्यान करे फिर समायक पारणे का पाठ पढ़े सो यह है समायिक व्रत के विषे जो कोई अतिचार लागा होय ते में अलोउं मण दुप्पड़िहाणे वय दुप्पड़िहाणे कायडुप्पड़िहाणे सामाइयस्स अकरणयाए समाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया तस्समिच्छामि दुक्कडं ७ और इस पाठ की भाषा और तरह

से भी है परन्तु यह पाठ सूत्रानुसार ठीक है ॥ और फिर दो वार पूर्वक विधि से " नमोत्थुण " पढे ॥ इति समायक विधि और जो समायक पडिक्कमणे का अवसर न होय तथा समायक पडिक्कमणा आवता न होय तो थोड़े काल का आश्रव का त्याग अर्थात् सवरही करले अथवा एक दो नव-कार की माला ही प लेवे और चौदह नेम का स्वरूप जानता होय तो चोदह नेम यथा शक्ति से करे जैसे कि मैं १ आज इतने सुचित्त उपरंत न खाऊगा और २ इतने के उपरन्त न खाऊगा इत्यादि । अथवा आज भाड़ का सुना न खाऊगा, अथवा इतनी हलवाई की दुकान के उपरन्त वस्तु न खरी दूगा, अथवा आज असुक वाणिज्य न करूगा,

अथवा आज ब्रह्मचारी रहुंगा इत्यादि । अथवा १८ अठारह प्रकार के पाप के स्वरूप को जान के फिर यथा श्रद्धा १ दिन तथा दो चार आदि दिन को पूर्वक पापों में से कई एक पापों का त्याग करे सो अठारह प्रकार के पापों के नाम ॥ १ प्राणाति पात ॥
जीव हिंसा

२ मृषावाद ॥ ३ अदत्ता दान ॥ ४ मैथुन ॥
झूठ चोरी स्त्रीसंग

५ परिग्रह ॥ ६ क्रोध ॥ ७ मान ॥ ८ माया ॥
धनसंचय क्रोध मान दगावाज़ी

९ लोभ ॥ १० राग ॥ ११ द्वेष ॥ १२ कलह ॥
लोभ प्रीति वैर लड़ाई

१३ वखान ॥ १४ पिशुनता ॥ १५ परप्रवाद ॥
कलंक लगाना चुगलखोरी परनिन्दा

१६ रतारत ॥ १७ माया मोस ॥ १८
हसना रोना — भेषधारी मायावी
खुशीदिलगीरी — कपाछल सहित झूठ
मिथ्या दर्शन सल्य ॥ इति
मिथ्या रूप समदृष्टि के विषय में भ्रम रूप सल्य

२ शिक्षा और फिर सूर्य्य उगे पीछे समायकादि पूर्ण हुए पीछे माता पिता को और बड़े भ्राता को बड़ी भौजाई, बड़ी बहन को नमस्कार करे और सुख साता पूछे और उन को धर्म कार्य में प्रेरे कि तुमने आज समायक करी अथवा नहीं और नगर में जो साधु तथा साध्वी विराजमान हों उनसे ऐसे कहे कि तुम दर्शन करो और व्याख्यान सुनो क्योंकि मनुष्य जन्म का यही फल है और स्त्री को तथा पुत्र पुत्री को तथा पुत्र

की स्त्री को धर्म कार्य में प्रेरे कि तुम समा यक, संवर करो और प्रथम तो शास्त्री अक्षर सीखो क्योंकि आर्य धर्म शास्त्री सीखे बिना प्राप्त होना मुश्किल है तस्मात् कारणात बेटा बेटी को प्रथम शास्त्री सिखानी चाहिये और ९ नौ तत्वों का स्वरूप सीखो जैसे कि ९ नौ तत्व का नाम ॥

१ प्रथम जीव तत्व । सो जीव चैतन्य अरूपी अखण्डित अविनाशी है, जीव कर्म को कर्त्ता है और कर्म को भोक्ता है जीव सुख दुःख का वेदी है और अनादि है जीव संसारी है जीव ही को मोक्ष प्राप्त होता है॥

२ दूसरा अजीव तत्व । सो अजीव जड़ रूप अचैतन्य और अरूपी और रूपी भी है अजीव कर्म को कर्त्ता नहीं और भोक्ता नहीं

अजीव सुख दु सका वेदी नहीं अजीव अनादि है अजीव परमाणु पुद्गल ससार स्वरूप है ।

३ तीसरा पुण्य तत्व । सो पुण्य अर्थात् सुकृत परोपकार दानादि रूप करना दुहेला और भोगना सुहेला जैसे बीमार को पथ्य करना दुहेला जो पथ्य करे तो सुखी होय ॥

४ चौथा पाप तत्व । सो पाप हिंसा मिथ्यादि रूप करना सुहेला और भोगना दुहेला जैसे बीमार को कुपथ्य करना सुहेला जो कुपथ्य करे तो दु:खी होय ॥

५ पांचवा आश्रव तत्व । सो आत्मा रूपी तलाव और आश्रव रूपी नाले जिस के द्वारा पुण्य पाप रूपी पानी आवे तिस को आश्रव कहते हैं ।

६ छठा सम्वर तत्व । सो आत्मा रूपी

तलाव आश्रव रूपी नाले जिस को बन्धन समान सम्वर अर्थात् हिंसादि आरम्भ का त्यागना ।

७ सातवां निर्जरा तत्व । सो जप, तप करके पिछले करे हुए कर्मों को क्षय करे तिस को निर्जरा कहते हैं ॥

८ आठवां बन्ध तत्व । सो आत्म प्रदेशों के ऊपर कर्म रूप पुद्गल लगे क्षीर नीर के दृष्टान्त जीव और कर्म के मेल को बन्ध कहते हैं ॥

९ नवमा मोक्ष तत्व । सो सम्वर भाव करके नये कर्म बान्धे नहीं और पहिले करे हुए कर्मों को निर्जरा करे तब शुभाशुभ कर्म के बन्ध से मुकावे तिस को मोक्ष कहते हैं॥ इति ॥

इस विधि से विस्तार सहित यथा सूत्र नौ तत्वों का बोध करो क्योंकि बुद्धि पाने का यही सार है:—यथा श्लोकः। बुद्धेः फल तत्व विचारणञ्च, देहस्यसार व्रतधारणञ्च। अर्थस्यसार कर पात्र दान, वाचा फल प्रीति कर नराणा ॥ १ ॥ अस्यार्थ ॥ जो इस लोक में प्राणी को ४ चार वस्तु विशेष वल्लभ हैं सो १ बुद्धि २ बल ३ धन और ४ उचित वचन परन्तु यह ४ चार वस्तु पुण्य योग से प्राप्त होती हैं। सो भो भव्य ! जो तुम को पूर्वक चार वस्तु प्राप्त हुई हैं तो इन को निष्फल मत करो जैसे कि बुद्धि को चाड़ी चुगली में और बल को वेश्या आदि व्यस्न में और धन को राड, झगड़े तथा जूआ आदि में और वचन को गाली गलोज

में मत खोवो अपितु इन को सफल करो यथा बुद्धि फल पूर्वक ९ नौ तत्वों का विचारना और देह की श्रेष्टता, व्रत उपवास और पोषध का धारण करना जैसे कि एक वर्ष के ३६० दिन होते हैं सो जो एक दिन रात निर्जल व्रत करे तो १०००००००००० हज़ार किरोड़ वर्ष के नर्क के बन्धन तोड़े और जो सर्व आरम्भ को त्याग के एकान्त धर्म स्थान में बैठ के समाधि सहित पोषक पूर्वक व्रत करे तो असंख्यात्त गुणा फल होय तथा आज कल कलिकाल में १०० वर्ष की उमर प्रकट है सो १०० सौ वर्ष के ३६००० छत्तीस हजार दिन होते हैं तो हे भव्यपुरुषो! एक दिन तो सफल करो और १ दिन रात के ८ पहर होते हैं तो १०० वर्ष के दो लाख

अठासी हज़ार पहर हुए जो १ पहर का व्रत करे तो पूर्वक १००० वर्ष के नर्क के बन्धन तोड़े और १ दिन रात के ३० महूर्त अर्थात् द्विघड़िये होते हैं तो १०० वर्ष के दस लाख अस्सी हजार महूर्त हुए सो जो दो घड़ी का व्रत करे तो पूर्वक १०० वर्ष के नर्क के वंधन तोड़े और १ महूर्त में ३७७३ सैंती सो तिहत्तर श्वासोच्छ्वास होते हैं तो १०० वर्ष के चार सौ सात किरोड़ अठतालीस लाख चालीस हजार श्वासोच्छ्वास हुए सो जो एक श्वासोच्छ्वास भी शास्त्रादि सुनते परम वैराग्य में आजाय तो भी जन्म कृतार्थ होजाय और तप फलस्य किं कथनम् । सो हे बुद्धिमान् पुरुषो ! बल पाने का यही सार है जो तप का करना और धन पानेका यही

सार है जो अभय दान सुपात्र में दान का देना। और बचन बोलने का यही सार है जो हितकारक प्रीति का पैदा करना, यथा। वचन२ सब कोई कहे, बचन के हाथ न पांव, एक बचन औषधि करे, एक जो घाले घाव, १ ॥ श्लोक ॥ येषां न विद्या न तपो न दानं, नचापि शीलं न गुणो न धर्मः। ते मृत्यु लोके भुवि भार भूता, मानुष्य रूपेण मृगा-श्चरन्ति ॥ १ ॥ और फिर देखिये कि हर एक मनुष्य अपने २ ऐसे वैसे नियम में भी उद्यम कर लेते हैं यानि जोहड़ तालाव आदि में गोते गाते लगा लेते हैं वा वेल पाति फल फूल तोड़ के मूर्ति पै चढ़ा देते हैं वा घड़ियाल घण्टा नगारा पै चोट लगादेते हैं वा उधर रोज़ा उधर निमाज़ उधर जीवघात

कर देते हैं और तुम सत्य दया धर्म पाकर कुछ तो २ घड़ी मात्र नियम करो ॥

जो तुम हमारे औसे यत्न सहित उत्तम कुल में पैदा होके तन, धन का लाभ न लोगे अर्थात् जीव यत्न न करोगे और सत्य शील दानादि शुभ कर्म न करोगे तो और क्या मलेच्छों के कुलों में करते जहां प्रात काल से सायकाल तक अशुभ कर्म हिंसा झूठादिक ही में जाता है ! जैसे कि भाठ झोंकने में तथा घास खोदने में तथा जाल गेरने में तथा मुर्गादि पाल्ने में और पाल के मारने में इत्यादि और अनेक अन्याय कर्म करने में तथा पराई नौकरी ऊच्च नीचादि में बीतता है इत्यर्थ । सो हे पुत्र ! हे बहु ! तुम्हारे बड़े भाग्य हैं जो औसी उत्तम कुल

आदिक सामग्री मिली है तो फिर अब तप दया दान आदि लाभ लूटो और विना पूञ्जे प्रलेहे चूल्हा चक्की न बर्तो और घुणां हुआ अन्न न पीसो पिसाओ और घुणी हुई लकड़ी न बालो और दाल चावलों का धोवन तथा चावलों का माण्ड और थाली आदि की जूंठ मोरी में मत गेरो ।

क्योंकि मोरी के पहिले कीड़े तो दग्ध हो जायंगे और और नये पैदा हो जायेंगे और चूल्हे के मकान ऊपर चन्दोआ चद्दर तान लो क्योंकि कोई जीव जन्तु पड़जाय तो उस जीव के प्राणों का नाश हो जाय और अपनी रसोई भोजन पानी विगड़ जाय तस्मात् कारणात् चौंके के मकान में चद्दर जरूरताननी चाहिये । अरे ! हे बेटा ! तुम

शौक के वास्ते तो बैठकों में खूब चद्दर चान्दनी तानते हो और दया के निमित्त चूल्हे पर चन्दोआ नहीं ताना जाता है, और खुला दीवा न रक्खो क्योंकि खुले दीवे में अनेक पतङ्ग आदि जन्तु पड़ के मर जाते हैं, और ढके हुए दीवे अर्थात् लालटैन आदिक में दो प्रकार के फ़ायदे हैं एक तो लौकिक और दूसरा लोकोत्तर सो लौकिक में तो मकान काला नहीं होता और चूहा वत्ती न लेजाय जो बुगचे आदिक में आग न लगे और फूल तथा स्याही गिर के किसी पे पड़े नहीं और लोकोत्तर में जीव यत्न होने से दया धर्म होता है और विना छत्ते मकान में भट्ठी न करो और जो करो तो पूर्वक अनर्थ जान कर आस्मानादिक का

यत्न करो और सूर्य्य उगे बिना लीपै नहीं और दूध विलोवे नहीं और रसोई का सीधा सोधे विना व्रतें नहीं और सीधे में अनछाना पानी वर्ते नहीं और कल्ल का पानी घड़ों का घल्या हुआ आज वर्ते नहीं और जो वर्तना होय तो मुड़के छाने विना वर्ते नहीं क्योंकि त्रस्य जीव पोरे आदिक पड़ जाते हैं और छाछ और घी विना छाने वर्ते नहीं क्योंकि मक्कड़ी कीड़ी आदिक का कलेवर पड़ा रह जाता है और नौंणी घी को वर्ण गन्ध रसादि पलटे पीछे खाय नहीं और जो इतनी समझ न होय तो नौंणी घी को रात वासी बिल कुल रक्खे नहीं क्योंकि छाछ के संयोग नर्माई के कारण बिगड़ जाता है ॥

और महीने में बाहर दिन छः तिथि

हरि फल आदिक का त्याग करो । अथवा निमि आंबिल आदिक तप करो । नौकरों को भी शिक्षा करो कि तुम पशुओं को बिना झटके फटके घास दाना आदिक न देवो और पशुओं को भूखे न रक्खो । और पशु के गले में खेंच के रस्सा न बान्धो और तंग न करो इस रीति परवारी जनों को धर्म कार्य में प्रेरे अपितु ऐसे ही न कहे जाय कि तुम पीसो कातो और यह करो वह करो इत्यादि ॥ ३ ॥ और फिर नगर में साधु होय तो उन के दर्शन करे और वन्दना नमस्कारादि सेवा समाचरे और साधु के पारणा तथा औपधि (भेपज) की चाह होय तो पूछे और पूछ के अपने घर होय तो अपने घर से देवे नहीं तो और घर से विधि मिलवा

देवे और अवसर सहित व्याख्यान सुने और आहार, पानी की विनती करे । और जो साधु नगर में विराजमान न होय तो धर्म स्थान उपाश्रय आदि में साहम्मीवच्छल करे अर्थात साधर्मी भाई इकट्ठे हो के धर्म उद्यम करे परन्तु कुछ जात पात का विशेष नहीं है तो फिर साधर्मी भाई किस को कहिये यथा—

॥ दोहा ॥ आसा इष्ट उपासना, खान पान पहरान । षट् लक्षण जिस के मिलें, उस को भाई जान ॥ १ ॥ और व्यवहार की बात न्यारी है । और आपस में साधु अथवा साध्वी की सुख साता की खबर पूछे कि अमुक मुनिराज अथवा अमुकी महा सती जी कौन से क्षेत्र में विराजमान हैं इत्यादि । और अपने क्षेत्र से साधु साध्वी जिस क्षेत्र

को विहार करे उस क्षेत्र के श्रावकों को चिट्ठी आदिक में खबर देवे कि अमुके साधु तथा महा सतीजी ने अमुके दिन तुम्हारे क्षेत्र को विहार यानि पहुचने की श्रुता करी है । और ऐसे ही जब साधु तथा साध्वी अपने क्षेत्र में जिस क्षेत्र से पधारे यानि आवें तो उस क्षेत्र वाले श्रावकों को खबर देवे कि अमुक साधु तथा साध्वी अमुक दिन सुख साता से विराजमान हुए क्योंकि रास्ते में निरारम्भ धर्म्म के अनजान लोगों के ग्रामों में किसी प्रकार का कष्ट परिसह तथा दुःख दर्दादिक उत्पन्न हो के विलम्ब लग जाय तो दोनों क्षेत्रों वाले उपासकों को ख्याल रहेगा कि रास्ता तो थोड़े दिनों का था, परन्तु अब तक साधु आये नहीं तथा पहुच

की खबर आई नहीं तो फिर कुछ उद्यम करना चाहिये नहीं तो शायद कुछ हीलणा धर्म की होय इत्यादि । और जो कोई ऐसे कहे कि साधु तो किसी का साहाय्य वांछे नहीं तो उसको ऐसा उत्तर देना चाहिये कि इस में साधु के सहाय्य वांछने का क्या मतलब है क्योंकि साधु तो सहारा न चाहै परन्तु श्रावक कों तो देवगुरु धर्म की शुश्रुषा करनी चाहिये अर्थात् खबर सार लेनी चाहिये कि मत कोई हीला होती हो, और कोई उनके खाने पीने को तथा असवारी तो लेही नहीं जानी है और जो देव गुरु धर्म की खबर सार आदि शुश्रुषा ही नहीं करे तो वह श्रावक भव सागर से पार कैसे उतरै और वह श्रावक ही काहेका है । और जो

कोई इस बात पे ऐसे तर्क करे कि भला गुरु की तो सेवा भक्ति करली परन्तु अपने देव धर्म की शुश्रूषा कही सो देवअरिहंत वा कोई अवतार कलिकाल में प्रकट नहीं है तो फिर शुश्रूषा कैसे करी जाय ?

उत्तर–अरे ! भाई ! देवधर्म की शुश्रूषा ऐसे कहाती है कि जो कोई भारी कर्मी देव धर्म की निन्दा आदि अपमान करता हो जैसे कि ऋषभादि पर्यंत महावीर स्वामी, क्या जैन के अवतार हुए हैं और क्या जैन का धर्म बताया है, तो उस को शिष्ट करे और ऐसे कहे कि जैन के देव धर्म का स्वरूप शास्त्रों द्वारा और जैन की प्रवृत्ति बमूजिब देखो कि कैसे जैन के अवतार शान्ति दान्ति निस्पृह परम विरक्त और

परम तपस्वी होके निरंजन निराकार पद को प्राप्त भये हैं, और कैसा जैन धर्म स्वात्म परात्म हित रूप और निस्पृह क्षमा दया तप रूप फ़रमाया है परन्तु ऐसे नहीं है कि और मत के शास्त्रों में तथा व्यवहार बमूजिब काम क्रोध में पीड़ित देव जैसे गोपी वल्लव और गदा धनुषादि शस्त्र धारक और उपदेश आत्म ज्ञान का सो कैसे संभव है। सो हे भाई! बताओ कि जैन के देव में और धर्म में क्या खोट है, और जो तुम्हारी समझ में कुछ खोट मालूम होता हो तो हम को बताओ हम उसका निर्णय करवा दें इत्यादि इस रीति से देव धर्म की शुश्रूषा होती है। ४ और फिर श्रावक दुकान पर जाकर वाणिज्य व्योहार रूप कार्य में प्रवर्त्ते तो पूर्वक १५

पन्द्रह कर्मादान मांहि ले कुवाणिज्य न करे और कम तोलना कम मापना न करे और दूसरे का ज्यादा वाणिज्य देख कर झूरे नहीं जैसे कि इस पड़ोसी के तो बहुत आमदनी है और मेरे थोड़ी है ऐसे शोक न करे किन्तु ऐसे विचारे कि जितनी २ पुद्गल की फर्सना होती है उतना २ ही सयोग वियोग होता है ॥ और बेटा बेटी के विवाह में अपने मकदूर (शक्ति) से जियादा धन न लगावे क्योंकि जो कर्ज उठाकर शेखी में आके घना (अधिक) धन लगा देगा तो फिर पीछे चिन्ता करनी पड़ेगी और दुष्ट ख्यालात हो जायेंगे और अपने नियम धर्म में भी खलल हो जायगा क्योंकि धन के घट जाने से बुद्धि मलीन हो जाती है तस्मात् कारणात् ॥

और ५ पराये सुख को और पराये पुत्र को
पराई सुरूपा स्त्री को देख के हिरस न करे
क्योंकि संयोग वियोग का स्वभाव जाने ॥
और यदि अपनी दूकान आदि पर बैठा
हुआ किसी सुरूपा पर स्त्री को जाती हुई
को देखे तो उसे किसी तरह का ताना बोली
वा तनाज़ा न करे क्योंकि जो देखे सो ऐसे
जाने कि यह पुरुष पर स्त्री ग्राह्य है और
अति कर्मादि कर्म बन्ध होजाता है और
जो मन की चंचलताई से काम रागादि
प्रकट होय क्योंकि रूप की और काम की
परस्पर लाग है । जैसे चम्बक पाषाण की
और लोहे की तो फिर स्त्री की अपावनता
विचारे कि अहो ! यह उदारिक देह सर्व ही
नर नारि की सात धातु करके उत्पन्न होती

है (सो) ३ धातु पिता के अंग बल से होती हैं हाड १ हाडकी मिंजी २ केश रोम नख ३ । और ४ धातु माता के अग बल से होती हैं मांस १ रुधिर २ चर्म ३ वीर्य ४ ॥

सवैया ३१ सा मास हाड चांम नस मेद गूद वस मज्जा केश शुक्र मिल यह पिंड रच्यो है । सुचि कौन अश प्रशश या की करे कौन चांम के सो थैला मैला मेल ही सु भर्‍यो है ॥ महारूठो झूण्ठो दीठ छिन में अपूठा होत लंपट निपट लोभी लालच में लच्यो है ॥ ऐसो राज देह यासें कीजिये कहा स्नेह यासे नेह कर नर कहो कौन बच्यो है ॥ १ ॥ अम्बर अनूप मृग नाभी घन सार घस कुकम चन्दन घोर खोर आछी कीजिये । चोवा मेद जवाद सु चरचित्त चारुचित्त अर

गजा संग चंग नासा सुख दीजिये ॥ चंवेली चंपेच तेल मोगरेल केवरेल तिलोछी अंगोछी अछेराज सोंध भीजिये ॥ छिनक सुगन्धि फिर होत है दुर्गंधि गन्धि पिण्ड या अपावन से कैसें धूपतीजिये ॥२॥ सरस अहार सार कीने चार प्रकार षट् रस सुख कार प्रीति कर पोखी है । आछे२ अम्बर अनूप आछा- दन कीजै तोख जोष राखियत रतीक में रोखी है ॥ नर के हैं नव द्वार नारि के ग्यारह बहत अशुचि जैसे मधुर की मोखी है ॥ मैल में सु घड़ी मढी कांच कीसी कूपी किधू अरिण्ड की झूफी काय पर खोखी है ॥ ३ ॥ सो जो अंग अंग के अन्तरों में से अंगुली घस के देखो तो मरे कुत्ते कीसी बगल गन्ध आदिक की दुर्गन्धि आती है

परन्तु कामान्ध प्राणी काम के पीड़े हुए
मिथुन विषय सुख अगीकार करते हैं न तो
महा अपावान और दुर्गछनीक निर्लज्ज
विषय सुख हैं ऐसे विचार कि कामाध्यवसाय
को मोड़े तथा ऐसे विचारे कि जो अपनी
घर की थाली में खाके मन की तृप्ति न हुई
तो फिर पराई जूठी सैणक चाटे सें क्या
तृप्ति प्राप्त होगी ? तथा ऐसे विचारे कि
शास्त्र भगवती जी में लिखा है कि स्त्री की
योनि के मल में सख्यात तथा असख्यात
गर्भेज तथा छसुछ्म जीव उत्पन्न होते हैं
और मैथुन के काल में विध्वस भाव को
प्राप्त होजाते हैं सो ऐसा असयम जान के
विषय भाव से निर्वृत्त होजावें तथा ऐसे
विचारे कि धन्य हैं वह सन्त और सती जन

जो विषय सुख को विष्टा के तुल्य जान के मन और दृष्टि कदाचित भी विषय की ओर नहीं करते हैं । सो इस रीति से सन्तोष भाव में प्रवर्तें और इसी रीति से जैन धर्म की प्रभावना होती है क्योंकि जान और अनजान देखने वाले ऐसे कहेंगे कि धन्य हैं यह जैनी लोग जो पर धन को तो धूलि के समान जानते हैं और पर स्त्री को माता के समान जानते हैं यथाऽन्य मत शास्त्रस्य साक्षी श्लोकः "मातृवत् परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्ट्रवत् । आत्मवत सर्व भूतानियः पश्यति स वैष्णवः" इत्यादि । परन्तु ढोल ढमाके से तो जैन की अधिकता अर्थात् प्रभावना कुछ नहीं होती है ॥ और ६ पराई रांड झगड़े में पड़े नहीं जैसे कि हर एक के झगड़े में

मुख्तार नामा ले बैठना और अपने सगेमाई को तो विलांद यानि १२ अंगुलि जगह भी नहीं और झगड़े में लाखों रुपया खर्च कर देना इत्यादि ॥

७ वें, धर्म कार्य अभय दानादिक देने में द्रव्य खर्चने का काम पड़ जाय तो अपने से सरे तो आप ही उद्यमवान् होय न तो और सह धर्मी भाइयों को प्रेरे कि अमुका धर्म कार्य करना है सो तुम भी यथा श्रद्धा द्रव्य लगाओ क्योंकि ससार सम्बन्धी अनेक कार्यों में कल्लर स्थल वीज भूत द्रव्य लगाया जाता है और धर्म कार्य तो निर्जरा तथा नीचा स्थल वीज भूत पुण्य पूंजी का उपार्जन है सो धर्म कार्य में द्रव्य खर्चने का कजूस पन करना न चाहिये ॥

८ कोई रंक दुःखित जन याचक उदर पूरण के लिये रोटी आदि पदार्थ की प्रार्थना करे तो उस का भी अपमान न करे क्योंकि करुणादान भी पुण्य खाते में है और अपमान करने से दया धर्म की हीलना भी होती है इत्यर्थः ॥

९ फिर रसोई जीमने को घर में आते भये साधु मुनिराज को आहार पानी की विनति करे सो ऐसे कहे कि हे महराज ! हमारे पै अनुग्रह करो भवसागर से तारो क्योंकि भाव दृष्टि में तथा रूप समणकुं एषणीक फासूक अहार पाणी पड़िलाभतां महा निर्जरा होती है ॥

और जो पुण्य कहते हैं वह द्रव्य दृष्टि है उन को परमार्थ की खबर नहीं है क्योंकि

पुण्य तो दीन दुःखी आदिक के देने में होता है साधु को देना निर्जरा का हेतु है अर्थात पुण्य बन्ध रूप है और निर्जरा मोक्ष रूप है इत्यर्थ ॥

१० और फिर अपने घर में आन के परिवारी जनों को पूछे कि साधु मुनि राज हमारे घर आये कि नहीं और योगवाई मिली अथवा नहीं ? और तुम भाव सहित अहार पानी दिया करो क्योंकि सन्त समागम दुर्लभ होता है । यथा सवैया २३ सा —

तात मिले पुनि मात मिले सुत भ्रात मिले युवति सुखदाई ॥ राज मिले सुख मिले शुभ भाग मिले मन वाछित पाई ॥ लोक मिले परलोक मिले सुरलोक मिले अमरा पद जाई ॥ सुन्दर और मिले सभी सुख

दुर्लभ सन्त समागम भाई ॥ १॥ तथा दोहा
धन दारा सुत लक्ष्मी, पापी के भी होय ।
सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय ।१

११ अपनी थाली पुरसवा के साधु के आगमन रूप भावना भावै और स्तोक काल भोजन करने में धैर्य करै अपितु भूखे बंगाली की तरह खाने को मूर्छित न होय । फिर जो पुण्य योग्य साधु आनिकलें, तो उनकी आतों को देख के उत्साह सहित ७।८ पग सामने जाने की विनय करे और पञ्चाङ्ग नमस्कार करे और ४ चार प्रकार का अहार (सो) १ अशन २ पान ३ खादिम ४ स्वादिम अस्यार्थः । १ अशन सो अन्न यानि जो नाज का पदार्थ बना हुआ हो । और २ पान (सो) पानी गर्म पानी तथा

आचाराङ्ग सूत्र २१ जाति का फासू पानी
कठोर्टी का धोवण जौं का धोवण चावलों
का धोवण दही दूध के भाण्डों का धोवण
इत्यादि । और ३ खादिम सो दूध दही घी
मिष्टान्न फासू फल आदिक, अन्न पानी के
सिवाय जिस्से भूख प्यास हरे । और ४
स्वादिम सो स्वाद मात्र औषधि की जाति
सुंठ मिरच लौंग सुपारी इलायची इत्यादि
सो इस चार प्रकार के यथा प्राशुक आहार
की तथा वस्त्र पात्र आदि की यथा अवसर
न्यारी २ निमन्त्रणा करे और साधु को चाह
होवे सो विधि सहित देवे और देके परमा
नन्द होवे और फिर हाथ जोड़ के अर्ज करे
कि हे स्वामिन् ! फिर भी दया दृष्टिकर के
कृपा की जियेगा क्योंकि मेघ की और

व्यापार के लाभ की तरह सदैव ही चाह रहती है और ७।८ पग पहुंचाने की भक्ति समाचरै तथा औरों के घर बता देवे तथा दलाली करा देवै सो इस रीति से गृहस्थी भव सागर तरने के मार्ग में प्रवर्तै। और १२ जो साधु स्वाधीन संयम से स्थिल प्रवर्तता होवे तो उसे खूब नर्म गर्म शिक्षा देवे कि हे स्वामी नाथ! हे आर्य! तथा हे साध्वी! हे आर्यिके तुम तो बुद्धिमान् हो और तुम नें संसार के विहार को अनित्य जान के योग धारा है तो अब अपनी सुमति गुप्ति आदि क्रिया से मत चूको जो तुम्हारे कर्मों की मोक्ष होवे नहीं तो न इधर के रहोगे न उधर के रहोगे, जैसे कोई पुरुष अपने घर से हाट हवेली बेच के एक मोटे नगर को

मोटे लाभ के निमित्त चला परन्तु मार्ग कठिन था सो अपने सुखमाल पन में आके कठिनता से डर के रस्ते ही में थक के ,पड़ और चोरों के हाथ माल लुटा बैठा ना घरका रहा न घाट का । अपितु उस को मुनासिब था कि उद्यम करके नगर में पहुच के और कमाई कर के शाहूकार और सुखी हो जाता तो उस का घर से जाना सफल होता यही दृष्टान्त है साधो ' तुमनें घर तो छोड़ दिया और आत्महित को उत्पन्न नहीं किया और काम क्रोध लोभ रूपी चोरों से तप सयम रूपी माल लुटवा दिया तो फिर तुम्हारे घर छोडे का क्या सार हुआ इस से तो घर में ही अच्छे थे क्योंकि गृहस्थी तो कहाते थे और अब साधु कहा के मायाचारी अर्थात्

दगावाज़ी सेव के पशुगति उत्पन्न करते हो तस्मात् कारणात् हे साधो ! तुम वस्त्र पात्रादि उपकरण का मर्यादा पर्यन्त संचय मत करो क्योंकि साधु का धन, कीड़ी का कण, पंछी की रोटी, और गृहस्थी की बेटी, अपने काम नहीं आती है और ही खा जाते हैं सो तुम तो नाहक लोभ की पोट सिर पर धर के भवसागर में डूबते हो। और रसना के वश-वर्ती हो के आरम्भ सहित सुचिता चित सदोष आहार पानी भोगते हो सो क्या तुम ने टुकड़े के धोखे टुकड़े ही खाने को मूंड मुंडाया है जैसे किसी ने कोई रुज़गार कर खाया और तुम ने भेष धर मांग खाया । और ज्योतिष, वैद्यक आदि दूमन टामन कर के पेट भराई तथा

बडाई तो लिया चाहते हो परन्तु दुर्गति से न बचोगे क्योंकि यह शेखी तो है ही नहीं कि मैं तो भेप धारक साधु हु इसलिये दुर्गति में कैसे पड़ूगा अपितु भेप से तथा चतुराई से तो कर्म निष्फल नहीं होते हैं यथा दोहा घर त्यागा तो क्या हुआ तज्यो न माया संग। सप्प तजी ज्यों कांचली जहर तज्यो नहीं अग ॥ १ ॥ भेप बदल के क्या हुआ गयो विष्ण कहु नाह। व्यभचारिणी पड़दा किया पुरुप पराया माह ॥२॥ सो हे साधो ! तुम लोच का करना और शीत ताप का सहना क्यों भाग के भाड़े खोते हो यथा उत्तराध्यन सूत्रम् अध्ययन २० वा गाथा ४१ वीं " चिरपिसे मुंड रुई भविता, अथिरवए तव नियमेहिं भठे, चिरपि अप्पाण किले

सइता, न पारए होइहूसंपराए" १ ॥ अस्यार्थः, घणां काल लगंते पासत्था साधु लोच करावता रहा, परन्तु अथिर है तेहनां महा ब्रत अर्थात तोड़ दिये हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील धन संचय के त्याग रूप महाब्रत और छत्ती सत्क आठै चौदस पक्षी के ब्रत वेलादि तप से और रसना के गृधी विषय आदिक के त्याग से और उभय काल आवश्यकादि नियम से भ्रष्ट है ते पुरुष नां घणे वर्षों का लोचादि कष्ट का सहना क्लेश रूप है क्योंकि नहीं पार पावै (हू०) इति निश्चय करके जन्म मरण रूप संसार का, इत्यर्थः । सो इत्यादि शिक्षा देके संयम में स्थिर करा देवे और जो इतने पर भी न माने तो उस का भेष उतरवा देवे क्योंकि भेष सहित में तो

उत्तम पुरुषों की और भगवान के धर्म की भी निन्दा होती है यथा कोई मनुष्य सिपाही की वर्दी पहन कर किसी का माल लूटले तो लोक ऐसे कहें कि देखो सरकार ही लूटने लग गई और जो वर्दी उतार ली जाय तो फिर कुछ करता फिरो सरकार की कुछ बदनामी नहीं होती और नहीं तो वन्दना पूजना छोड़ देवे क्योंकि गुण की पूजा है कुछ देह की पूजा नहीं है अपितु गुरु के चरणों की तर्फ ही न देखे कुछ गुरु के चलणों की तर्फ भी देखना चाहिये कि गुरु के चलन क्या हैं परन्तु ऐसे न करे कि दोहा—सोना पीतल सारिपा, पीले की परतीत । गुन अवगुन जानें नहीं, सच से कह अतीत ॥ १ ॥ जैसे अनेरे मूर्ख जन ऐसे कहते हैं कि

चाहे गधे के ऊपर भगवां कपड़ा पड़ा हो तो उस को भी मत्था टेक लेना चाहिये, अपितु ऐसे नहीं किन्तु दोहा—ईर्षा भाषा एषणा, लखलीजै आचार । गुणवन्त नर को जान के, बन्दै बारम्बार ॥ १ ॥ और फिर १३ श्रावक रात्री को धर्म स्थान में पूर्वक समायक पड़िक्कमणा करे और रात्री का चोविहार तथा तिविहार तथा ब्रह्मचारादि अंगीकार करे और फिर रात को सोते पड़े नींद खुल जाय तो दुष्ट विचारों में न पड़े जैसे कि आह ! फ़लाना मित्र क्यों न मिला और अमुके वाणिज्य में लाभ क्यों न हुआ, तथा हे दुश्मन ! तेरा नाश होय इत्यादि अपितु शुद्ध विचार करे जैसे कि धन्य हो शान्तिनाथ जी, पार्श्वनाथ जी और

महावीर स्वामी जी, इस प्रकार चौवीसों
जिनेन्द्रों की महिमा करे जैसे कि धन्य हो
शान्ति धर्म प्रवर्त्तावक आप तरे और औरों
के तरने को भला रास्ता दया क्षमा रूप वता
गये सदा विजयी रहो शासन तुम्हारा ।
तथा साधु सती के गुणों का स्मरण करे कि
धन्य हो सतजन कनक कामिनी और देह
की ममता के त्यागी तथा शीतादि परिसह
सहने को क्षांति क्षमण हो और मैं अधन्य
हु जो जान बूझ के कनक कामिनी के फंदे
में फंस रहा हु और हिंसा मिथ्यादि आरम्भ
को अनर्थ का मूल जान के फिर समाचरण
कर रहा हु और वह दिन धन्य होगा कि
जो मैं आरम्भ परिग्रह को अन्त कर्ण से
कटुक फल का दाता जान के उदासीन हो

के तजूंगा और अनुभव आतम स्वरूप सत्य सत्या में मगन होके तप संयम में उद्यमवान् हूंगा इत्यादि और फिर प्रभात समय पूर्वक विधि सहित समायिकादि अङ्गीकार करे और १४ जो कृपाणी वणजता होय तो परोपकार के निमित्त कृसाणादि शूद्र जाति तथा शूद्र कर्त्तव्य करने वालों को उपदेश रूप शिक्षा देवे कि हे भाई ! तुम ने पूर्व पुण्य के योग से नर देह पाई है परन्तु साधु का तथा धर्म का अपमान करने के पाप से शूद्र वर्ण में जन्म हुआ है तो शूद्र कर्म अर्थात् खेती बाड़ी कूआ आदिक अजीविका करे बिना तो तुम को सरै नहीं हैं परन्तु निर्दय होकर मोटा पाप तो न समाचरो जैसे कि पराई भूमि तोड़ के अपनी न करो और अपनी

भूमि में हल फेरते हुए प्रथम तो १ बैलों को भूख से प्यास से तथा क्रोध सहित घनी मार से न सताओ क्योंकि उनके बल की तुम कमाई खाते हो और फिर ऐसा विचार करना चाहिये कि इन पशुओं ने पूर्व जन्मांत्तरों में माता पिता की और गुरु की शाहूकार की तथा उपकारी की नेक आज्ञा मानी नहीं और उनको दु ख दिया और किये हुए उपकार को मेटा तथा साधु कहा के साधु के गुण अङ्गीकार नहीं करे जैसे कि मन और इन्द्रियों को साधा नहीं और बैठे बठाये गृहस्थियों को घूर २ के हराम के टुकड़े खाये और आद्य बेच २ धन इकट्ठा करा और स्त्री सङ्ग से निवृत्त नहीं हुए और फिर साधु कहा के गृहस्थियों से मत्था टिकवाया

तथा छत्ती सत्त सिरसे कर्ज़ चुकाया नहीं तथा विश्वास घात अर्थात् मित्र वन के अगले का भेद लेके काम विगाड़ें । यथा मित्र से अन्तर गुरु से चोरी इत्यादि कर्मों से पशु योनि में उत्पन्न हुए हैं और यहां नाक छिदाई है और पीठ लदाई है और सुख दुःख ताप शीत भूख प्यास पर वश हो रही है और दुःख सुख किसी को बताने में समर्थ नहीं हैं सो हे भाई ! ये तो अपना पूर्व कर्म फल भोग रहे हैं, फिर तुम इन को निर्दय होकर और क्रोध में भर कर दान्त पीस कर ताड़ोगे तो तुम को भी क्रोध के वश शायद पशु योनि का बन्धन पड़ जावेगा और इसी तरह बदला देना पड़ेगा ॥ और दूसरे बूढी गौ वा बूढे बैल आदिक को

दाम मिलते जान के कसाई के हाथ न वेचो क्योंकि तुम ने पशु को पहिले वेटा वेटी की तरह पाला है और उस से काम वहुत लिया है और वह पशु तुम्हारी शरणागत है फिर तुम दो चार रुपये के लालच से कसाई को केसे देते हो क्योंकि वह कसाई अधर्म नर नर्क गामी मास चाम के निमित्त उस पशु को तत्काल मार देगा तस्मात कारणात पशु का कसाई के हाथ न दो और जो देवे तो उसे भी कसाई के समान जानना चाहिये अर्थात् पशु को कसाई के वेचे सो कसाई १ पशु को मारे सो कसाई २ मास हाड चाम चर्वी वेचे सो कसाई ३ कसाई की दुकान का ग्राहक (मास खरीदे) सो कसाई ४ मांस पकावे सो कसाई ५ मांस खाय सो कसाई ६

शस्त्र बेचे (कसाई को शस्त्र) देवे सो कसाई ७ कसाई को व्याज पै दाम देवै सो (कसाई की अधर्म कमाई का) व्याज खावै सो कसाई ८ इति ॥ और ३ तीसरे हल फेरते २ जब मध्य में थोड़ासा खेत रह जाय तब स्तोक काल अर्थात् थोड़ी देर हल को बन्द करो क्योंकि जितने खेत में जीव जन्तु होते हैं वे हल से डरते २ मध्य में आजाते हैं सो हल के थामने से वे जीव सुखाभिलाषी हुये २ कहीं २ को भाग जायेंगे और तेरा इस में कुछ लम्बा हरज भी नहीं है और जो तू निर्दय हो कर जलदी हल फेर देगा तो नाहक उन जीवों के प्राण लूटने के पाप का भागी होवेगा ॥ और ४ चौथे पशु की चिचड़ी उतारे विना तो तुमें सरता नहीं है

परन्तु मारो मत जैसे कि गारे में गोवर में वा अग्नि में दाव के मत मारो और जूंमे लीख मांगन आदिक जीव को जान के बिलकुल न मारो और मारोगे तो अव्वल तो तुम इसी जन्म में बहुत दुःखी हो के कीड़े पड़के मरोगे अथवा जो पिछले पुण्य के करार पूरे न होने से यहां दुःख न होगा तो अगले जन्म में तो बदला जरूर देना पड़ेगा, जैसे कि नर्क में जाके कीड़ों के झुण्ड में गेरे जाओगे और जो तुम ऐसे कहोगे कि ये हम को काटते हैं हम इन को क्या करें तो फिर हम ऐसे कहेंगे कि हे भाई ! इन के पापों से इन को ऐसी ही योनि मिली है और तेरे पापों से तेरे अङ्ग में कीड़े समान उत्पन्न हुए हैं फिर ये अपनी उदर

पूरणा करने को कहां जावें और ये तो तेरे को काटे ही हैं कुछ तुझे जान से तो नहीं मारते हैं फिर तू भी इन को एकान्त ठिकाने गेर देने का यत्नकर पर तू मार मत क्योंकि ये तो अनाथ जीव हैं इन को तो भले बुरे की खबर नहीं है और तू तो मनुष्य है और समर्थ है और परमेश्वर को और पुण्य पाप को जानता है फिर तू उन ग़रीब ज़ीवों का शिकार करता है और ऐसा अन्याय़ करता है कि वे तो तुझे काटे ही हैं और तू उनको जान से मार गेरे है सो ऐसा न चाहिये क्योंकि सुना है कि महा भारत में लिखा है कि ॥ यूकामत्कुणदन्शाद्यैर्या वत्र वाधिता तनुः पुत्रवत्त परिरक्षन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ।१। और ५ पांचवें जो कहीं खेत क्यारी में

तथा मकान में सर्प निकले तो उसको पकड़
के कहीं एकान्त छोड़ दो तथा तुम चुप के
हो रहो वह आप ही कहीं चला जायगा
परन्तु मारो नहीं क्योंकि वह निरपराध है
तुम को तो उस ने कुछ कहा नहीं है फिर
तुम उस को कैसे मारोगे और तुम जो ऐसे
कहोगे कि सांप हम को खा जाता है तो
हम उत्तर देते हैं कि हे भाई ! साप बिना
छेड़े और बिना दवाये तो किसी को नहीं
खाता है शायद की बात न्यारी है क्योंकि
वह तो आप ही डरता फिरता है और जान
को लकोता दश दिश को भागता है और
हे भाई ! ऐसा कौन है जो छेड़ने से नहीं
खाता है देखो जैसे पशुओं में बहुत गरीब
और अच्छी जाति गौ की है परन्तु उस को

भी जो कोई छेड़े और दुखावे तो वह भी सींग मार के पेट फोड़ गेरती है सो हे भाई! दुःखाने से तो सभी दुःखदायक होते हैं चाहे भले हों चाहे बुरे हों और सांप का तो कहना ही क्या है उसने तो बुरा स्वभाव पूर्वले पापों से पाया ही है जैसे कि पूर्व जन्म में पराई संपत्ति और पराया सुख देख २ आप ही आप क्रोध में जला और सौकन की तरह गुरु के और माता पिता के छिद्र देखता हुआ और कटु वचन बोलता भया और फिर दुरकारा हुआ अन बोलने क्रोध वश ज़हर खाय मरता हुआ ऐसे कर्म से सर्प की योनि पाता हुआ है, सो हे भाई ! भले के साथ तो भलाई हर कोई कर लेता है परन्तु भलाई तो उस की सराही जाती कि जो बुरे के साथ

भलाई करे और जो कोई मति हीन ऐसे कहे कि परमेश्वर का (खुदाका) हुकम है कि साप का मारना मुमकिन है तो फिर उस को ऐसे कहना चाहिये कि हे भाई ! तैंने भी कुछ अकल पाई है क्योंकि ऐसे समझना चाहिये कि जो बिलकुल मतिहीन होगा वह भी ऐसा अन्याय नहीं करेगा कि जो पहिले अपने पुत्र को तथा नौकर को खोटे कर्म सिखावेगा (यानि वे अदवी करनी तथा गाली देनी इत्यादि) और फिर जब वह वे अदवी करने लगे तथा गाली देने लगे तब कहे कि इसे जान से मार दो । अपितु ऐसे नहीं तो फिर परमेश्वर (खुदा) को तो बड़ा दयालु और न्यायी कहते तो उसनें किस तरह पहले तो सर्प आदिक जीव जहरी बनाये और

अफ़सोस नहीं करते हैं जैसे कि देखो येह
पशु हमारी तरह सुख को चाहते हैं और
खाने को खाते हैं और ठंडा पानी पीते हैं
और सात धातु की पैदायश से मेद पूरित
मल मूत्र से भरे हुए हैं और अपनी जाति
की स्त्री से काम सेवन करते हैं और बची
बचे में प्रीति करते हैं और जीवन चाहते
मरने से डरते हैं तो फिर इन के मारने में
हम को बडा दोष होगा क्योंकि सब मतों
में परजीव को पीड़ा देनी बड़ा अधर्म कहा
है और दया यानि रहमदिली सब मतों में
अच्छी कही है यथा "नधम्म कज्ज पर्मत्थ
कज्ज, न प्राणी हिंस्सापर्मअकज्ज" इति
वचनात । और फार्सी वाले भी ऐसे कहते
हैं कि "दिल किसीका न दुखा अए दिल

वर, सुना है कि यह है खुदा का घर" "दिलब-दस्तावर के हज्जेअकबरस्त । अज हज़ारां काब्बा यकदिल बेहतरस्त" इत्यादि ॥ सो अनार्य लोक अपने सिर अज़ाब होने का तो हौल करते नहीं हैं बलकि ऐसी खुशी गुज़ारते हैं कि यह स्वर्ग तथा बहिश्त होगया तो फिर उन को पूछना चाहिये कि हे अन्यायियो ! जो ऐसी जुल्म की मौत मरनें से स्वर्ग और बहिश्त होती है तो फिर मा बाप को और बेटा बेटीको क्यों नहीं स्वर्ग करते तथा आप ही स्वर्गवासी क्यों नहीं होते यथा कवित्त "कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया बीर, होमत हुताशन में कौन सी बड़ाई है ॥ स्वर्ग सुख में न चाहुं देहु मुझे जो न कहुं घास खाय रहुं मेरे यही

अफ़सोस नहीं करते हैं जैसे कि देखो येह पशु हमारी तरह सुख को चाहते हैं और खाने को खाते हैं और ठंडा पानी पीते हैं और सात धातु की पैदायश से मेद पूरित मल मूत्र से भरे हुए हैं और अपनी जाति की स्त्री से काम सेवन करते हैं और बच्ची बच्चे में प्रीति करते हैं और जीवन चाहते मरने से डरते हैं तो फिर इन के मारने में हम को बड़ा दोष होगा क्योंकि सब मतों में परजीव को पीड़ा देनी बड़ा अधर्म कहा है और दया यानि रहमदिली सब मतों में अच्छी कही है यथा "नधम्म कज्ज पर्मत्थ-कज्ज, न प्राणी हिंस्सापर्मअकज्जं" इति वचनात । और फार्सी वाले भी ऐसे कहते हैं कि "दिल किसीका न दुखा अए दिल

वर, सुना है कि यह है खुदा का घर" "दिलब-
दस्तावर के हज्जेअकबरस्त । अज हज़ारां
काब्बा यकदिल बेहतरंस्त" इत्यादि ॥ सो
अनार्य लोक अपने सिर अज़ाब होने को
तो हौल करते नहीं हैं बलकि ऐसी खुशी
गुज़ारते हैं कि यह स्वर्ग तथा बहिश्त
होगया तो फिर उन को पूछना चाहिये कि
हे अन्यायियो ! जो ऐसी जुल्म की मौत
मरनें से स्वर्ग और बहिश्त होती है तो फिर
मा बाप को और बेटा बेटीको क्यों नहीं
स्वर्ग करते तथा आप ही स्वर्गवासी क्यों
नहीं होते यथा कबित्त "कहै पशु दीन सुन
यज्ञ के करैया वीर, होमत हुताशन में कौन
सी बड़ाई है ॥ स्वर्ग सुख मैं न चाहुं देहु
मुझे जो न कहुं घास खाय रहुं मेरे यही

मन भाई है ॥ जो तू यों जानत है वेद यों वखा
नत है यज्ञजलो जीव पावे स्वर्ग सुख दाई है।
पड़े क्यों न आप ही कु ,व क्यों न गेरे बीच
मोह मत जार जगदीश की दुहाई है ॥१ ॥

क्योंकि तुम तो स्वर्ग (बहिस्त) के
सुखों को जानते हो और चाहते हो सो
तुम को तो (बहिस्त) दौड़ के लेनी चाहिये
और वे पशु तो विचारे गरीव जानवर कुछ
बहिस्त को नहीं जानते हैं और न चाहते
हैं तो फिर तुम लोग उन को ज़बरदस्ती
बहिस्त क्यों देते हो अपितु कहा है इस
तरह से बहिस्त सो हे भाई ' क्यों गाफल
हुए हो ज़वान के रसिया और काम के
वधारक और मांस के लोभी हो के गरीव
जानवरों की गर्दन पर छुरी धरते हो और

अपने फांस लगी को भी आह करते हो और जो इस तरह बहिश्त मिलता तो खुदा ने शेरों को हलाल करके बाहिश्त पहुंचाना क्यों न बताया अपितु ऐसे कहां अरे भाई ! ऐसे समझो कि " जो सिर काटे और का, अपना रहे कटाय, सांई की दरगाह में, बदला कहीं न जाय ॥ १ ॥ सो जो शिकार खेलते हैं और कुत्ते और बाज़ जानवरों के मारने को पालते हैं और गर्भ सहित पशु जाति को मारते हैं तथा स्त्री का गर्भ गलाते हैं तथा मुर्गी के अंडे बच्चे को मार खाते हैं वे बड़े अपराधी होते हैं क्योंकि उन की मां का कलेजा तड़फता रह जाता है सो इत्यादि कर्म करने वाले निश्चय नर्क में पड़ते हैं और वहां यम यानि फ़रिस्ते उस पाप के करने

वाले को वैसे ही पशु बना के और आप
बाज़ और कुत्ते बन के फाड २ कर खायेंगे
और पूर्वक घने दुःख पावेंगे और फिर बहुत
काल के बाद वे पापी जन नर्क से निकल
के जेकर मनुष्य होवें तो फिर भी पिछले
पाप के अंश से रोगी और दरिद्री होते हैं
और उन की स्त्रियों के गर्भ क्षीण हो हो
जाते हैं और इत्यादि बहुत दुःख भोगते हैं
(सो) हे मिथ्यातियो ! तुम मिथ्यात को
तजो और स्वात्म तुल्य परात्म सुखाभिलाषी
जान के दया घट में धारो जैसे गीता का
वाक्य जैन से मिलता है " अहिंसा परमो
धर्म इति वचनात् " और ६ छठे जो खेत में
चूहे हो जावें तो उन को जहर आदिक की
गोली देकर न मारो क्योंकि जीव हिंसा का

पूर्वक दोष होता है और जितनें चूहे मारे उतने ही विहारथ की पशु योनि में जन्म करने पड़ते हैं और उतने ही कई जन्मों में बेटा बेटी मरते हैं ॥

और जो वह कृषाण ऐसे कहे कि हम इन चूहों को न मारें तो ये हमारा अनाज खाजाये तो फिर उस को ऐसा उत्तर देना चाहिये कि हे भाई ! जो तेरी पराल्बध यानि भाग अच्छे होंगे तो चूहों के खाते भी नफ़ा हो रहेगा और जो तेरे भाग हीन होंगे तो चूहों के मारे से भी घाटा रहेगा जैसे कि सोका पड़ जाय तथा डोबा पड़ जाय तो खेत में कुछ भी पैदा न होगा तथा खेत में चोरी हो जाय तथा आग लग जाय तो फिर तू क्या करेगा इस्से पहिले ही दया

जान के सतोष कर, जो तेरा भला होय और ७ सातवें किसी के खेत की चोरी करनी नहीं और खेत में आग लगानी नहीं तथा पुरानी वाड़ में आग लगानी नहीं तथा वन में आग लगानी नहीं क्योंकि वहां बहुत जीव जन्तु होते हैं वे नाहक मारे जाते हैं और कपास विना झाड़े लोढनी नहीं और होलें करनी नहीं क्योंकि उन में अनेक कीड़े वृथा ही मारे जाते हैं । सो हे शूद्रजनों ! तुम इतने तो मोटे पाप छोड़ो ।

और ८ आठवें तुम से और तो सुकृत बनना मुश्किल है परन्तु साधु (सन्त) की सेवा भक्ति करा करो अर्थात् भोजन आदिक दान दिया जाय तो यही बहुत सुकृत है क्योंकि जो किसी वक्त साधु सुपात्र पोषे

जांय तो खेवा पार हो जाय संगम जाट की तरह और अपनी स्त्रियों को शिक्षा करा करो कि हे स्त्रि ! तुम कूड़ कपट क्लेश की सहिज स्वभाव धरता हो और अज्ञान के बल से ईर्षा में चिन्ता में प्रवृत्त हो और रात दिन धंधे ही में बीतता है सो तुम से और तो सुकृत होना मुश्किल है परन्तु रसोई के वक्त जो साधु (संत) आ निकले तो उनको भक्तिसे यथा श्रद्धा भोजन दे दिया करो जो भला तुम्हारा इसी से कुछक निस्तारा हो जाय इति।

इस रीति से गामों में अनजान लोकों को समझाना चाहिये कि जानकारों ने तो शिक्षा घनी सुन रक्खी है परन्तु अनजान एक भी समझ जाय तो बहुत लाभ होय क्योंकि वह मोटे पाप का त्याग करेगा और

भवसागर में डूबने से उद्धार हो जायगा तस्मात कारणात धर्मोपदेश बहुत श्रेष्ठ है क्योंकि बाह्य दृष्टि में जाति और वर्ण का विशेप है परन्तु अन्तर्दृष्टि अर्थात् ज्ञान कर के देखें तो वास्तव में कुछ भेद नहीं है यथा ज्ञानी कौन ' जो स्वहित जाने। अज्ञानी कौन ' जो स्वहित न जाने। अन्धा कौन ' जो अपने अवगुण और पराए गुण न देखे । सुनाखा कौन जो अपने अवगुण पराये गुण देखे । चतुर कौन जो भली शिक्षा माने । और अपने अवगुण और परगुण प्रकाश करे। मूर्ख कौन जो भली शिक्षा न माने । और अपने गुण और परअवगुण प्रकाश करे यथा छंद, मानविना एक स्थान रहे। नर ज्ञान बिना चर्चा खोले, पक्ष बिना झगड़े पख से

नर काज विना पर घर डोले, कण्ठ विना नर शब्द करे नर प्रेम बिना लोचन घोले, आहार निद्रा में लीन सदा मूर्ख लछन इन पर बोले ॥ १ ॥ विना भूख खाय सो मूर्ख ॥ २ ॥ अजीर्ण पै खाय सो मूर्ख ॥ ३ ॥ घना सोय सो मूर्ख ॥ ४ ॥ घना चले सो मूर्ख ॥ ५ ॥ घनी देर पैरोंके भार बैठे सो मूर्ख ॥ ६ ॥ बड़ी नीति छोटी नीति की बाधा रोके अर्थात् दस्त पेशाब का प्रवाह रोके सो मूर्ख ॥ ७ ॥ नीचे को सिर ऊपर को पैर करके सोवे सो मूर्ख ॥ ८ ॥ सारी रैन स्त्री सहित शय्या में सोवे आर्थात् वारवार विषय सेवे सो मूर्ख ॥ ९ ॥ सोलह वर्ष की उमर हुए विना मैथुन सेवे सो मूर्ख क्योंकि बल और विद्या की हानि हो जाती

है ॥११॥ बुढापे में व्याह करावे सो मूर्ख ॥१२॥ भोजन और भजन करता बात करे तथा हसे सो मूर्ख ॥१३॥ चिन्ता मेटता बात करे सो मूर्ख ॥१४॥ हजामत करावाता वाद करे सो मूर्ख ॥१५॥ बिन पहचाने के साथ राह चले सो मूर्ख ॥ १६ ॥ पचक्खान लेके याद न करे सो मूर्ख ॥ १७॥ माता पिता और गुरू की भक्ति कर के मन नहीं हरे सो मूर्ख ॥ १८ ॥ धनवान से और पण्डित से वाद करे सो मूर्ख ॥१९॥ तपस्वी से वाद करे सो मूर्ख ॥ २० ॥ पराया बल धन रूप विद्या देख के हिरस करे सो मूर्ख ॥ २१ ॥ हकीम के मिले पे रोग की व्यथा सुना के औषध न खाय सो मूर्ख ॥ २२ ॥ पण्डित के मिले पे मन का संशय न हरे सो

मूर्ख ॥२३॥ सत्पुरुष त्यागी साधु की संगत पाके त्याग पचक्खान सेवा, भक्ति न करे सो मूर्ख ॥ २४ ॥ सुपात्र के योग मिले पै दान न देवे सो मूर्ख ॥ २५ ॥ ब्राह्मण कौन यथा श्लोक । सत्यवादी जितक्रोधः शील सत्य परायणः । सनाम ब्राह्मणो मान्य इन्द्र पुत्रेह भारत ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ अस्यार्थः सच्च बोले जीते काम क्रोध को ब्रह्मचारी सत्य धर्म करने में उद्यमी तिस को ब्राह्मण कहिये हे भरत ! इत्यर्थः ॥

चण्डाल कौन यथा पाण्डव चरित्रे। "एक-वार कह भीम बहुर कहने नहिं पाया। चण्डाल वही नर जानिये औगुण कहे पराया ॥ १ ॥ मात पिता भये वृद्ध ना वा की टहल करेई । चंडाल सोई नर जानिये नारी को

दु:ख देई ॥२॥ बिन औगुण नारी तजे मन्त्र वेद की व्याही । ब्रह्मचारी होकर तजे तो कुछ दूषण नाहीं ॥३॥ कंद मूल फल खाय पुरुष पर सु ललचावे । गंद दिनों के बीच नारि के संग चितलावे ॥ ४ ॥ निज पुरुष को निन्दना पर सखियन पै जाय । चण्डाल सोई नर जानिये चुगली करके खाय ॥५॥ दया धर्म को तजे धान कन्या का खावे । सङ्ग युद्ध से डरे भैंस गाई हड़ ल्यावे ॥६॥ साझ प्रभात मध्यान में रमें त्रिया के संग । चण्डाल सोई नर जानिये जो करे नेम को भंग ॥ ७ ॥ भाजी दे संयोग में सब का बुरा मनावे । जो कन्या को हने सो चण्डाल कहावे ॥ ८ ॥ महिषी सुत विनाश ही गौ सुत विधिया होय । चोट लगावे स्वान के

चण्डाल सोई नर जोय ॥ ९ ॥ हरी दातन जो करे बड गूलर फल खावै । धर्म पंथ ना चलै जोहड में नित २ न्हावै ॥ १० ॥ सदा २ पावक जलै करै घना नुकसान । सब रस मेल भोजन करे चण्डाल सोई नर जान ॥११॥ जल में बैठे बाहर ताहीं से चुल्लू उठावै । बन में करे शिकार गोलिये जीव हनावै ॥ १२ ॥ पंचामृत मिलाय करै जिभ्या का स्वादा । ताते लागे महा कर्म करै सन्तन सुं वादा ॥ १३ ॥ गुण ही को औगुण कहै दग़ाबाज़ नर जेह । निग्रंथ गुरु को कहै झूठा चण्डाल कहीजे तेह ॥ १४ ॥ गई वस्तु जो गई ताह नर कर है झोरा । मद्य मांस जो खाय गोसुत करै बिछोरा ॥ १५ ॥ होय क्लेश कुटुंब में मन में हरषत थाय । यती

क्रोध चण्डाल है इस में संक न काय ॥१६॥ वन दव कूचा देय धर्म हिंसा में तोरा। रण में चाले भाज देख दुशमन का जोरा ॥१७॥ जो नर वचन को हार ही वस्त अकेला खाय । चण्डाल सोई नर जानिये चौरासी रुल जाय ॥१८॥ पशु तो खर चण्डाल पखी तो वायस कहिये। वृक्ष कीकर चण्डाल तास की छांह न बहिये ॥१९॥ साठ कदम साधु रहे दर्शन बिन मुड़ जाय। चण्डाल सोई नर जानिये चहु गति गोता खाय ॥ २०॥ इति प्रथम शिक्षा व्रतम् ॥ १ ॥

१० अथ द्वितीय शिक्षा व्रत प्रारम्भ ॥

द्वितीय शिक्षाव्रत दिशावकाशी सो छठे और सातवें व्रत से दिशा का और उपभोग्य परिभोग्य का विस्तार सहित और यावज्जीव

तक प्रमाण किया था सो उस में से दसवें दिशा व काशी ब्रत में दो घड़ी से ले के चार छः मास लगकी बहुत मर्यादा कर लेवे यथा सूत्रम् ॥

इति द्वितीय शिक्षा ब्रतम् ॥

११ अथ तृतीय शिक्षा ब्रत प्रारम्भः ॥

तृतीय शिक्षाब्रत पोसो पवास सो द्वितीया पंचमी अष्टमी एकादशी चतुर्दशी तथा पक्षी के दिन वा जिस दिन बन आवे उसी दिन पोषध साल अर्थात् एकांत शुद्ध मकान में चारों आहार मैथुन और सावद्य व्यापार का परित्याग करके सूर्य्योदय से अगले सूर्य्योदय तक बैठा रहे यथा सूत्र, पोसा करे देव गुरु धर्म की महिमा रूप

स्वाधाय करे और पढना पढाना सीखना सिखाना आदिक धर्मकार्य करता रहे और जो पूर्व मन, वचन, काय करके नियमादिक में अतिचार वा अनाचार लगा हो तो अलोवना करे क्योंकि अलोवना तप बड़ा प्रधान है कि अपने अवगुण अपने मुख से कह देने और फिर बुद्धिमान पुरुष उस के अपराध बमुजिब उसका तप रूप दण्ड दे देवे सो उस तप के करने से पाप का नाश हो जावे जैसे कि हकीम के आगे रोग की उत्पत्ति बताने से उस के बमुजिब औषधि खाने से रोग जाता रहे इत्यर्थ और जो पूर्वक तिथियों को पोषा व्रत न बन आवे तो पक्षी को जरूर करे और जो पक्षी को भी न बन आवे तो चौमासी

को करे और जो चौमासी को भी न बन आवे तो छमच्छरी को तो ज़रूर ही पोषा करे क्योंकि वर्ष दिन में एक दिन तो सफल हो जाय इत्यर्थम् । और दिवस के पडिक्कमण में ४ लोगस्स का ध्यान करे और रात्री के पडिक्कमण में २ का ध्यान करे और तप का विचार करे और पक्षी को १२ का ध्यान करे चौमासी को २ पडिक्कमण और २० का ध्यान छमच्छरी को २ पडिक्कमण ४० का ध्यान करे ॥

इति तृतीय शिक्षा व्रतम् ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ शिक्षा व्रत प्रारम्भः ॥

चतुर्थ शिक्षा व्रत आतिथ्य संविभाग, सो तथा रूप श्रमण साधु त्यागी पुरुष को

निर्दोष फासूक अन्न पानी देवे परन्तु ऐसे न करे कि १ प्रथम जो फासूक अर्थात् अग्नि आदिक से तथा पीसन कूटन प्रमुख से निर्जीव पदार्थ हो चुका है तो फिर उस को सुचित फल फूल बीज आदिक ऊपर रखना अपितु न रक्खे। और २ दूसरे सुचित वस्तु करके फासूक वस्तु को ढके नहीं क्योंकि जो ऐसे रक्खे तो उस को साधु महा पुरुष के पडिलाभने की दान लब्धी कैसे होगी और उसकी भावना, विनति भी निष्फल होजायगी क्योंकि आहार पानी तो सदोष स्थान में स्थापित है तो फिर भावना काहे की भाता है विष मिश्रित पक्वान्न से मित्र के जिमानेकी इच्छावत्। तो फिर श्रावक को उपयोग चाहिये कि सुचित और अचित

वस्तु को इकट्ठी पास अड़ा के न रक्खे। और ३ तीसरे साधु की भिक्षा का वक्त बीते पीछे भावना भावनी, सो कालाई कम्मे दोष है क्यों कि समय पर भावना भावे तो शायद सुफल भी होजाय और बिना समय तो अकाल में मेघ मांगनेवत् है। और चौथे ४ जो गृहस्थी आप एकान्त बैठा हो तो प्रमाद के वस होके दूसरे को आहार पानी देने का काम न सौंपे अपितु आपही देवे क्यों कि आर्य देश कुल आदिक की सामग्री, बिना सुपात्र दान की योग वाई कहां धरी है इत्यर्थः। और ५ पांचवें आहार पानी देने के पहिले वा पीछे अहंकार न करे जैसे कि मैं बड़ा दाता हूं मेरे तुल्य और यहां कौन दाता है, हे स्वामी नाथ ! जो आप को

चाहिये सो यहां से लेजाया करो अथवा मैं दान दूंगा तो लोक मेरी बड़ाई करेंगे अपितु निर्जरा मोक्षार्थ उत्साह सहित दान देवे (सो) इस रीति से जैनधर्म की प्रभावना होती है ॥

इति चतुर्थ शिक्षा व्रतम् ॥ इति १२ व्रत सामान्य भाव समाप्त ॥

और जो कोई पृच्छक नर ऐसे कहे कि तुम ने यह पूर्वक कथन कौन से सूत्र की अपेक्षासे इस ग्रन्थ में लिखे हैं तो उसको यह उत्तर है ॥

उत्तरम्—अरे भाई ! हम तो सूत्रों के नाम, पूर्वक कथन के साथ ही लिखते चले आये हैं ॥

पूर्वपक्षी—सूत्रों में तो इस रीति से कथन नहीं है ॥

उत्तर पक्षी—अरे ! तुझे समझ नहीं पड़ता होगा क्योंकि सूत्रों में तो संक्षेप मात्र गूढ़ार्थ है और मैंने कुछक बादर करके बात रूप लिखा है। तदपि कोई सावद्य वचन आदिक तथा सूत्र के न्याय वाक्य उत्थापक रूप तथा सूत्र को दूषण भूत कथन उपयोग सहित अर्थात जान के तो लिखा नहीं है। और जो मेरी भूल चूक से यत्किं-चित् न्यूनाधिक लिखा गया हो तो बुद्धि-मान् पुरुष कृपा करके शुद्ध कर लेवें और मेरी अलपबुद्धि को देख कर भूल चूक माफ कर देवें इति हेम। और कई एक पुरुषों को, प्रचलित विविध प्रकार के मतों को देखकर और कई तरह के भ्रम जनक वाक्यों को सुन सुना कर यह संदेह उत्पन्न होरहा

है कि "सनातन धर्मानुयायी जैन पट्टावली किस तरह है" सो उन से इस सन्देह को दूर करने के लिये २४ अवतारों के ६ बोल सहित नाम लिख कर पट्टावली लिखते हैं —

तीर्थंकरनाम	जन्मनगरी	पितानाम
१ ऋषभदेवजी	धर्नीतानगरी	नाभिराजा
२ अजितनाथजी	अयोध्यानगरी	जितशत्रुराजा
३ संभवनाथजी	श्रावस्तीनगरी	जितारिराजा
४ अभिनन्दजी	अयोध्यानगरी	संवरराजा
५ सुमतिनाथजी	अयोध्यानगरी	मेघरथराजा
६ पद्मप्रभुजी	कौशांबीनगरी	श्रीधरराजा
७ सुपार्श्वनाथजी	वाराणसीनगरी	प्रतिष्ठराजा
८ श्रीचन्द्रप्रभुजी	चन्द्रपुरीनगरी	महासेनराजा
९ सुविधिनाथजी	काकन्दीनगरी	सुग्रीवराजा
१० शीतलनाथजी	भद्दिलपुर	दृढरथराजा
११ श्रेयांसनाथजी	सिंहपुरी	विष्णुराजा
१२ वासुपूज्यजी	चंपापुरी	वसुपूज्यराजा
१३ विमलनाथजी	कम्पिलपुर	कृतवर्मराजा
१४ अनन्तनाथजी	अयोध्यानगरी	सिंहसेनराजा
१५ श्रीधर्मनाथजी	रत्नपुरीनगरी	भानुराजा
१६ शान्तिनाथजी	गजपुर	विश्वसेनराजा
१७ कुंथनाथजी	गजपुर	सूरराजा
१८ अरिनाथजी	गजपुर	सुदर्शनराजा
१९ श्रीमल्लिनाथजी	मिथलानगरी	कुम्भराजा
२० मुनिसुव्रतजी	राजगृहीनगरी]	सुमित्रराजा
२१ नमिनाथजी	मथुरानगरी	विजयराजा
२२ नेमिनाथजी	सोरीपुर	समुद्रविजय
२३ पार्श्वनाथजी	वाराणसी	अश्वसेनराजा
२४ महावीरजी	क्षत्रियकुंडनगर	सिद्धार्थराजा

मातानाम	आयुर्मान	अन्तरकाल
मरुदेवी	८४लक्षपूर्व	५० लाख किरोडसागरका अन्तर
सिद्धार्थारानी	७२लक्षपूर्व	३० लाखकिरोडसागर
सेनारानी	६०लक्षपूर्व	१० लाखकिरोडसागर
सिद्धार्थारानी	५०लक्षपूर्व	९ लाखकिरोडसागर
मंगलारानी	४०लक्षपूर्व	९० हजारकिरोडसागर
सुसीमारानी	३०लक्षपूर्व	९ हजारकिरोडसागर
पृथ्वीमाता	२०लक्षपूर्व	९ सौकिरोडसागर
लक्ष्मणरानी	१०लक्षपूर्व	९० किरोडसागर
रामारानी	२लक्षपूर्व	९ किरोडसागर
नन्दारानी	१लक्षपूर्व	१ किरोडसागर६६२६०००वर्षऊन
विष्णुरानी	८४लक्षवर्ष	५४ सागरचुथाईपल
जयारानी	७२लक्षवर्ष	३० सागरपौणपल
श्यामारानी	६०लक्षवर्ष	९ सागरचुथाईपल
सुयशारानी	३०लक्षपूर्व	४ सागरचुथाईपल
शुव्रत्तारानी	१०लक्षपूर्व	३ सागरचुथाईपल
अचिरारानी	१लक्षवर्ष	॥ अर्द्धपल
श्रीरानी	९५हजारवर्ष	चुथाईपल१हज़ारकिरोडवर्षऊन
देवीरानी	८४हजारवर्ष	१ हज़ारकिरोडवर्ष
प्रभावतीरानी	५५हज़ारवर्ष	५४ लाखवर्ष
पद्मावती	३०हजारवर्ष	६ लाखवर्ष
विप्रारानी	१०हजारवर्ष	५ पांचलाखवर्ष
शिवादेवीरानी	१हजारवर्ष	८३७५० वर्ष
वामादेवी	१००वर्ष	२५० वर्ष
त्रिसलादेवी	७२वर्ष	,,

अथ महावीर स्वामी जी के पाट लिख्यते ।

१	श्रीसुधर्म स्वामीजी वीरमोक्षात्	२० वर्षे मोक्ष
२	श्री जम्बू स्वामीजी	६४ वष पीछे मोक्ष
३	प्रभा स्वामीजी	७५ वर्ष पीछे २६ में देव लोक
४	शय्यंभवस्वामी	९८ वर्षे देवलोक
५	यशोभद्र स्वामी	१४८ वर्षे देवलोक ह्रो पाट साथ
६	संभूत विजय	१५६ वर्षे देवलोक गया
७	भद्रबाहु स्वामी	१७० वर्षे देवलोक गया
८	स्थूलभद्र स्वामी	२१५ वर्षे देवलोक गया
९	आर्य महागिरिजी	२४५ वर्षे देवलोक गया
१०	सुहस्तिह स्वामी	३०१ वर्षे दवलोक गया
११	सुवर्ण स्वामीजी	३३२ वर्षे देवलोक गया
१२	वीर स्वामी जी	३७६ वर्षे देवलोक गया
१३	सण्डलिस स्वामी	४०६ वर्ष दवलोक गया
१४	जितधर स्वामी	४५४ वर्षे
१५	आय समद्र स्वामी	५०३ वर्षे
१६	नदिल स्वामी	५९१ वर्ष
१७	नागहस्ति स्वामी	६६४ वर्षे

१८ रेवंत स्वामी	७१६ वर्षे
१९ सिंहगण स्वामी	७८० वर्षे
२० स्थंडिलाचार्य	८१४ वर्षे
२१ हेमवंत स्वामी	८४८ वर्षे
२२ नागजिन स्वामी	८७५ वर्षे
२३ गोविन्द स्वामी	८७७ वर्षे
२४ भूतदिन्न स्वामी	९१४ वर्षे
२५ छोहगण स्वामी	९४२ वर्षे
२६ द्विपगण स्वामी	९६० वर्षे

२७ देवद्धीक्ष मासमन ९७५ श्री महावीर स्वामी जी के ९८० वर्ष पीछे सूत्र कल्पादि की लिखित हुई वैक्रम सम्वत् ५१० के अनुमान में और टीका संवत् ११२० के अनुमान में वनाई गई है ॥ २८ वीरभद्र स्वामी । २९ शंकरभद्र स्वामी । ३० यशोभद्र स्वामी । ३१ वीरसेन भद्र । ३२ वीरग्राम सेन ।

३३ जयसेन । ३४ हरिषेण । ३५ जयषेण । ३६ जगमाल । ३७ देवर्षि । ३८ भीमर्षि । ३९ कर्माजी । ४० राजर्षि । ४१ देवसेन । ४२ शंकर सेन । ४३ लक्ष्मीलाभ । ४४ रामर्षि । ४५ पद्मसूरि । ४६ हरिसेन । ४७ कुशलदत्त जी । ४८ उवण ऋषि । ४९ जयषेण । ५० विद्या ऋषि । ५१ देवर्षि । ५२ शूरसेन । ५३ महाशूरसेन । ५४ महासेन । ५५ जयराज । ५६ गजराज । ५७ मिश्रसेन जी । ५८ विजयसिंह ऋषि सवत् १४०१ में जाति का देवड़ा । ५९ शिवराजर्षिजी संवत १४२७ में जाति कलूबी, पाटनका वासी । ६० लालजी, जाति का वाफणा, मानस का वासी सवत् १४७१। ६१ ज्ञानजी ऋषिजी संवत् १५०१ जातिका

सुराणा, सेर डाना वासी । ६२ भाणुल्लनाजी भीम जी, जंगमाल जी, हरसेन आदिक ४५ पुरुष लोंके के उपदेश से हुए संवत् १५३१ और तस्मिन् काले भस्म ग्रह उतरा । ६३ रूप जी । ६४ जीवराज जी । ६५ भावसिंह जी । ६६ लघुवरसिंह जी । ६७ जसवन्त जी । ६८ रूपसिंह जी । ६९ दामोदर जी। ७० धनराज जी । ७१ चित्यामणिजी ।७२ क्षेमकर्ण जी । ७३ धर्मसिंह जी । ७४ नागराज जी । ७५ जयराज जी ऋषि गिरिधर जी प्रमुख और भी कई हुए और बजरंग यति का चेला लवजी उन दिनों में यतियों की क्रिया हीन देख के यतियों को छोड़ के शास्त्रोक्त क्रिया करके जयराज जी के पाट बैठे सो उन्हों को प्रतिपक्षी लोग ढूंढिये

कहने लग गये सवत् १७२० अनुमान में। ७६ ऋषिलव जी। ७७ ऋषि सोमजी। ७८ ऋषि हरिदासजी। ७९ ऋषि वृंदावन जी। ८० ऋषि भवानिदास जी। ८१ पूज्य मल्लूकचन्द जी। ८२ पूज्य महासिंह जी सवत १८६१ में सधारा असोज शुदी १५ सीझे कार्तिक वदी १ प्रभात समय १६ दिने ८३। पूज्य कुशालचद जी। ८४ ऋषि छजमल जी। ८५ ऋषि रामलाल जी। ८६ पूज्य श्री अमरसिंह जी सवत् १८९८ वैशाख वदी २ दीक्षा ओसवाल जाति अमृतसर के वासी आचार्यपद स० १९१३ शहर इन्द्रप्रस्थ यानि दिल्ली मे। देशान्तर माहेघणे गद हस्थी की तरह विचरे जिन धर्म दया मार्ग बहुत प्रकाश्या, महा प्रतापी घणे साधु जन के

परिवार से संयम पाला संवत् १९३८ में देव-
लोक अमृतसर नगरे आषाढ़ वदी २ द्वितीया
को । ८७ पूज्य श्री रामबख्श जी महा-
त्यागी वैरागी पण्डित राज शहर अलवर
के वासी जाति का ओसवाल, दीक्षा, शहर
जैपुर, आचार्य पद शहर कोटला, संवत्
१९३९ ज्येष्ट वदि ३ को फिर २१ दिन पीछे
देवलोक ज्येष्ट शुदि ९मी, को । ८८ पूज
श्री मोतीराम जी, जाति के क्षत्री, महा
क्षमावान् दयावान् पूज पद संवत् १९३९
शहर मालेरकोटला मध्ये ॥ संवत् १९५८
कार्तिक मासे देवलोक शहर लोध्याना मध्ये
८९ पूज्य श्री सोहणलालजी जाति के ओ-
सवाल दीक्षा संवत् १९३३ मगसर मासे
महाप्रतापी बाल ब्रह्मचारी जुगराज पद

संवत १९५१ चैत्र मासे पूज्य पद संवत् १९५८ मगसर सुदि ९मी गुरु वासरे ॥

जो कोई पूर्व पक्षी ऐसा प्रश्न करे ॥

प्रश्न–तुम कितने सुत्र मानते हो जिन के अनुसार तप संयम पालते हो ?

उत्तरम्–हम द्वादशाग वाणी को मानते हैं, (सो) ११ ग्यारह अङ्ग और बारहवा अङ्ग दृष्टि वाद॥ और इसी द्वादशांग को समवायांग सुत्र तथा नन्दी सुत्रादि में "गणिपड़गा" अर्थात् आचार्य्य की पेटी, कहा है, सो ११ अंग तो वर्त्तमान अर्थात् अब हैं (सो) १आचारांग, २सुअगडांग, ३ ठाणाग, ४ समवायाग, ५ विवहाप्रज्ञप्ती, ६ ज्ञाता धर्म कथा, ७ उपासगदशा, ८ अन्तगड़दशा, ९ अणुत्रोववाईदशा १० प्रश्न व्याकरण,

११ बिवाग, इति ११ अंगनाम ॥ और १२ बारहवां जो दृष्टिवाद अंग है तिस के सूत्र असंख्यात हैं सो इस काल में विछेद होचुका है परन्तु जो दृष्टि वाद में से अब आरे और बुद्धि प्रमाण उववाई आदिक २१ इकीस सूत्र जिनकी आदि मध्य अंत का स्वरूप ११ अंग से मिलता है सो उन को हम मानते हैं क्योंकि नन्दी सूत्र में कहा है, कि दश पूर्व अभिन्ह वोहि समसूत्री इत्यादि । तस्मात् कारणात् जिन ग्रंथों में १० पूर्वऊ ने पाठी कर्त्ता का नाम और साल का नाम हो सो सम्पूर्ण सम सूत्र नहीं माना जाता है ॥ और फिर ऐसे भी है कि जैसे उत्तराध्ययन सूत्राध्ययन ३ तीसरे गाथा ८ आठवीं, माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुईधम्मस्स

अव्वल तो निरञ्जन निराकार जो होगा सो कुछ नहीं करेगा क्योंकि वह आकाशवत् है, सो करने धरने की शक्ति तो आकार वाले को है निराकार को फ़ुरना नहीं और दूसरे जब स्वसिद्ध है तो फिर सृष्टि रचने का और खोने का परिश्रम क्यों उठावे और क्यों प्राणियों को सुख दु ख की उपाधि में गेरे और जो ऐसे कहोगे कि सुख दु ख उन के कर्मों के बमूजिब देते हैं, तो उन के कर्म रहें फिर ईश्वर को क्यों मानते हो इत्यादि तथा संवेगी लोग कहते हैं याने जैन तत्वादर्श ग्रन्थ में आत्मारामजी लिखते हैं कि आवश्यक में लिखा है कि चेड़ा राजा की छटी बेटी सुज्येष्ठा नाम थी उस ने कुमारी ने ही योग धारण किया था फिर उसे

एकान्त तप करती को देख कर पेढाल नाम संन्यासी ने व्यामोह करके विद्या बल से उस की योनि में बिना मैथुन किये ही वीर्य संचार कर दिया फिर उस में से सत्य का पुत्र पैदा हुआ और उस पुत्र का नाम सत्यकी रक्खा और लिखा है कि सत्यकी अबृत्ति समदृष्टि श्रावक हुआ और महाबीर जी का परम भक्त हुआ है और फिर रोहणी विद्या साधी और उस विद्या ने उस के मस्तक में को प्रवेश किया इस लिये वहां तीसरा नेत्र हुआ है फिर उसने अपने संन्यासी पिता को मार दिया था कि इस ने कुमारी कन्या की निन्दा कराई थी, इस लिये वह रुद्र (नाम) कहाया और फिर काल दीपक विद्याधर को समुद्र में विद्या खोस के मार दिया और आप

दुल्हा, जंसुञ्चा पड़िवज्जन्ति, तवं खन्ति महिंसयं ॥ १ ॥ अस्यार्थ —

इस गाथा में ऐसा भाव है कि मनुष्य जन्म तो प्राणी ने पाया, परन्तु धर्म शास्त्र का सुनना दुर्लभ है, सो धर्म शास्त्र कौनसा कि जिस के सुनने से श्रोताजन अगीकार करे। १ तप २ क्षमा ३ दया ये ३ तीन पदार्थ अङ्गीकार करने की अभिलाषा होय, १ क्योंकि जैसा शास्त्र में कथन होगा वैसाही श्रोताजन अर्थात् सुनने वाले का भाव होगा तस्मात् कारणात् ऐसे जानों कि धर्मशास्त्र वही है कि जिस्में तप क्षमा और दया का कथन प्रधान है और जिसमें इन का लोपन है वही कुशास्त्र जानों सो जो वेद, पुराण भागवत, रामायण, व्याकरण

टीका आदिक और मतों के शास्त्र हैं उन में भी जो तप क्षमा दया का वर्णन है सो सर्व प्रमाण है और उस कथन को शास्त्र ही मानते हैं अपितु शास्त्र का सार यही है । यथा श्लोक, 'अष्टादश पुराणानि, व्यासस्य वचनं द्वय, परोपकारेण पुण्यञ्च, पापश्च परपीडनम्' ॥ १ ॥ अस्यार्थः सुगम :—

सो हे बुद्धिमानो ! विचार के देखो कि इस में पक्षपात् की कौनसी बात है परन्तु हम लोग ऐसे नहीं मानते हैं कि जैसे कई एक मतान्तरी ऐसे कहते हैं कि ईश्वर निरञ्जन निराकार ज्योतिः स्वरूप है और फिर कहते हैं कि वही सृष्टि को रचता है और वही खो देता है और वही सुख दुःख प्राणियों को देता है ॥ उत्तरम् सो नहीं, क्योंकि १

अव्वल तो निरञ्जन निराकार जो होगा सो
कुछ नहीं करेगा क्योंकि वह आकाशवत् है,
सो करने धरने की शक्ति तो आकार वाले
को है निराकार को फ़ुरना नहीं और दूसरे
जब स्वसिद्ध है तो फिर सृष्टि रचने का और
खोने का परिश्रम क्यों उठावे और क्यों
प्राणियों को सुख दु ख की उपाधि में गेरे
और जो ऐसे कहोगे कि सुख दु ख उन के
कर्मों के बमूजिब देते हैं, तो उन के कर्म
रहें फिर ईश्वर को क्यों मानते हो इत्यादि
तथा संवेगी लोग कहते हैं याने जैन तत्वा-
दर्श ग्रन्थ मे आत्मारामजी लिखते हैं कि
आवश्यक में लिखा है कि चेड़ा राजा की
छठी बेटी सुज्येष्ठा नाम थी उस ने कुमारी
ने ही योग धारण किया था फिर उसे

एकान्त तप करती को देख कर पेढाल नाम संन्यासी ने व्यामोह करके विद्या बल से उस की योनि में बिना मैथुन किये ही वीर्य संचार कर दिया फिर उस में से सत्य का पुत्र पैदा हुआ और उस पुत्र का नाम सत्यकी रक्खा और लिखा है कि सत्यकी अवृत्ति समदृष्टि श्रावक हुआ और महावीर जी का परम भक्त हुआ है और फिर रोहणी विद्या साधी और उस विद्या ने उस के मस्तक में को प्रवेश किया इस लिये वहां तीसरा नेत्र हुआ है फिर उस ने अपने संन्यासी पिता को मार दिया था कि इस ने कुमारी कन्या की निन्दा कराई थी, इस लिये वह रुद्र (नाम) कहाया और फिर काल दीपक विद्याधर को समुद्र में विद्या खोस के मार दिया और आप

विद्याधर चक्रवर्ती हुआ फिर तीन सन्ध्यामें सर्व तीर्थ प्रतिमा को भेट आता रहा वहां इन्द्र ने महेश्वर नाम दिया और विद्या के जोर से प्रच्छन्न होके सैंकड़ों कुमारियों से मैथुन सेवता रहा और उज्जैन नगर के चन्द्र प्रद्योत राजा की शिवादयी पटरानी को छोड़ सब रानियों से मैथुन सेया और उज्जैन की रहने वाली उम्मा वेश्या के आधीन कामासक्त रहा तो फिर राजा ने खबर पाकर वेश्या को विश्वास देकर उसका अच्छी तरह से सब भेद लेकर उम्मा समेत उसे मार दिया और उसकी विद्या उसके नन्दीश्वर चेले में प्रवेश करी और उसने लोकों को डराकर अपने गुरु के उम्मा सहित मैथुन की पूजा कराई भी लिखी है, इत्यादि ॥ सो हे बुद्धि

मान पुरुषो यह कथन तुम्हारी समझ में
सनातन सूत्रों के न्याय सत्य माॡम होता
है १ अपितु नहीं,यदि नहीं तो फिर क्या
कहना चाहिये कि वाह जी वाह संवेगी ।
खूब बीर जीके भक्त प्रतिमा पूजक सम
दृष्टि श्रावक लिखे हैं क्योंकि जब सत्य से तो
पैदा हुआ और महाबीर जी का भक्त था
तबतो ऐसे कौतुक करे कहते हो और जो
हराम का तथा अभक्त होता तो क्या जाने
क्या कौतुक करे लिखते ॥ सो हे मताव-
लम्बी ! हम तुम को प्रीति से पूछते हैं कि
तुम्हारे बड़ोंने ये कल्पित कहानियें सुनी
सुनाई आवश्यक सरीखे उत्तम सूत्रों में
कलंक रूप क्यों लिखीं और तुम ने क्या
समझ के पक्ष के घण घणाट में प्रमाण करली

क्योंकि तुम भी तो अकल के रूह देखो से कि जो महावीर स्वामी का भक्त था तो ऐसे पूर्वक कर्त्तव्य कैसे सभव है और जो ऐसे निकम्मे कर्म करने वाला था तो महावीर स्वामी का भक्त कैसे कहा इत्यादि तस्मात् कारणात् जो ग्रन्थों में सूत्रों से अमिल्ति कथन हैं वह बुद्धिमान पुरुषों को निर्णय करे विना कदाचित प्रमाण करने नहीं चाहिये और जो सनातन सूत्रानुसार किसी भी ग्रथ में कथन होय सो तहत प्रमाण करो।

इति द्वितीयो भाग समाप्त ।

पञ्चम्या गुरुवासरे सितदले कन्यार-वोवैक्रमे, वेदाव्यङ्क विधो विधोतमनसा ज्ञानस्यसंदीपिका । सत्यासत्य विवेकेताविर-

चिता सत्यासतीनांसताम्, भूयात्सर्वांहिताय नित्यममला श्रीपार्वतीनांकृतिः ॥ १ ॥ श्री-कुञ्जलालपद पङ्कजलब्धबोधः संशोधनं परि-चकार विचार पूर्वम् । अङ्गाब्धिनन्दविधु संमित वैक्रमेऽब्दे, ग्रन्थस्यकश्चिदिहदोष लवंक्षमध्वम् ॥ २ ॥

इति श्री सनातन जैन धर्मोपदेशिका

बालब्रह्मचारिणी आर्या श्री पार्वती

सती विरचितो ज्ञानदीपिका

जैन ग्रन्थः समाप्तः ॥

॥ शम् ॥

क्योंकि तुम
कि जो मह
पूर्वक कर्त्त०
निकम्मे कर्म
स्वामी का
कारणात् ज
कथन हैं वह
करे विना व
चाहिये और
भी ग्रथ में कथ

इति हिर

पञ्चम्या
वोवैकमे, वेदा
ज्ञानस्यसदीपिक

चिता सत्यासतीनांसताम्, भूयात्सर्वांहिताय नित्यममला श्रीपार्वतीनांकृतिः ॥ १ ॥ श्री-कुञ्जलालपद पङ्कजलब्धवोधः संशोधनं परि-चकार विचार पूर्वम् । अङ्गाब्धिनन्दाविधु संमित वैक्रमेऽब्दे, ग्रन्थस्यकश्चिादिहदोष लवंक्षमध्वम् ॥ २ ॥

इति श्री सनातन जैन धर्मोपदेशिका

बालब्रह्मचारिणी आर्या श्री पार्वती

सती विरचितो ज्ञानदीपिका

जैन ग्रन्थः समाप्तः ॥

॥ शम् ॥

॥ अशुद्धि शुद्ध पत्रम् ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
७	११	तवय भाव	तव पभाव
८	११	सवंगा	संवेगी
९	२	चोपड	चोपड़े
९	८	सिद्धि	सद्धि
१३	१३	विधारक	वधारक
१५	११	सत्का	सत्की
२१	२	प्रचीन	प्राचीन
२७	१३	लिखा	लिखे
२८	१	दाक्षी	दिक्षा
३१	८	समान	समन
३२	२	दण्ड	दृषड
३२	१५	फिर भी	फिर और भी
३६	८	स्थावर	स्थावरा दी
४०	१६	॥	॥ १२ ॥
४७	१०	करे तो	करे और जो पछम को मुख करके पूजे तो
५०	२	विचारने	विचरने
५६	६	देखने काम .	देखने से काम
५७	१२	क्षयोपम	क्षयोपशम
६७	५	माप्प्र मापरा	माप्पमायप
६७	६	तत्व का	तत्व के
७०	४	साचित	सचित
८२	९	को मान्ते	को पूजना मानने
८३	१३	जीना	जीन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१६१	•	पूर्व के	पूर्व की
१६५	२	रोग्य	भोग्य
१७७	८	वैकुण	वैङ्कण
२०९	१३	कंदर्य्य	कंदर्प्प
२११	११	गिर्द	गृद्धि
२१२	११	फल	जल
२१६	३-४	करि वन्दामिच्ता	करित्ता वन्दामि
२१६	८	लोप	लोप
२१६	९	नमक्कारो	नमोक्कारो
२१६	१०	प्याणा	प्पणा
२१७	१	पांचदि असं	पंचिदिअ सं
२१७	४	सामउ	सुमिउ
२१७	९	१	
२१७	९	णाए	णाए १
२१७	१०	३	२
२१७	११	कमणे	कमणे ३
२१८	२	घवरोविआ	ववरोविआ
२१८	३	तस्य	तस्स
२१८	५	णट्ठाए	णट्ठाए
२१८	७	वासय	वाय
२१८	१३	अप्पणं	अप्पाण
२१९	३	सुमिण	सुमिइं
२१९	४	प्यहं	प्पहं
२१९	५	सिज्जंस	सेज्जंस
२१९	९	विहुमर य	विहुअ रय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२१९	१२	मारोग्ग	मरोग्ग
२२०	१५	सामाजिक	समायिक
२२१	४	पुरिसु	पुरिसा
२२१	११	सङ्घी	पङ्घी
२२१	१२	मह	मह
२२१	१५	न्यून	न्यूने
२२२	१	मपुर्ण रायाति	मपुण राविचि
२२२	३	६ इस	इस
२२३	१४	पद्मिय	पद्मिय
२२४	११	सुचित्त	सचित्त
२२४	११	इतन क	इतन द्रव्य क
२२६	५	विषय में भ्रम रूप सम्य	विषय में सम्य
२३५	१	भात्विक सामग्री	भात्विक की सामग्री
२४१	२	मपन	भापन
२४१	७	या तनाआ न फर	न कर
२४७	१२	मूर्पा काय	मूर्पा पर्मी काय
२४८	४	कि	क
२५०	३	नहीं मीर	नहीं नमा मार
२५२	१२	मुक्त मिम	सुप साक्ष मिले
२५४	१	सूत्र	सूप
२५५	१०	विहार	व्यवहार
२५६	३	पड	पड़ा
२५७	१	सुचिता	सचिता
२७२	१४	कहत ता	कहत हा ता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२७५	३	वेहतरस्त	वेहतरस्त
२८६	४	गद	गंद्
२९६	२	उन से	उन के
२९९	३	सिद्धार्थारानी	विजयारानी
२९९	१५	पूर्व	वर्ष
२९९	१६	पूर्व	वर्ष
३०९	६	द्रय	द्रय
३१०	१०	रहें	रहे
३१०	१०	ईश्वर को क्यों मानते हो	ईश्वर को बीच में क्यों मानते है
३१४	१	देखो से	देखो
३१४	१८	विवेकता	विवेक तो

* प्रार्थना *

सब जैनी भाइयों को विदित हो कि दूसरी वार यह पुस्तक ज्ञानदीपिका ५०० प्रति छपा था, और हाथों हाथ विक्रय हो गया था अब दूर २ देशों से नित्य प्रति पत्र आते थे, इस कारण हमने तीसरी वार यत्न से टाईप के उत्तम अक्षरों में छपवाया है। अब सब से यही प्रार्थना है, कि हर एक भाई अपने २ नगर तथा अन्य देशों में इस पुस्तक का प्रचार करें।

दास

मेहरचन्द, लक्ष्मणदास

(श्रावक)

मालिक संस्कृत पुस्तकालय

लाहौर।